उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मनोवैज्ञानिक शोधविधि(एमएपीएसवाई -501)

(Psychological Research Methodology) (MAPSY-501)

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई-1	मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Psychological Research)	1-5
इकाई-2	मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप एवं विषय-क्षेत्र(Nature and Scope of Psychological Research)	6-10
इकाई-3	मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Perspective of Psychological Research	11-14
	खण्ड 2: शोध समस्या एवं उपकल्पना (Research Problem and Hypothesis)	
इकाई-4	शोध समस्या की परिभाषा एवं चयन की कसौटियाँ (Definition and criteria of selecting a Research Problem)	15-24
इकाई-5	शोध उपकल्पना:- अर्थ एवं प्रकार (Research Hypothesis:- Meaning and types)	25-34
इकाई-6	उपकल्पना के स्रोत एवं एक अच्छी उपकल्पना की विशेषताएँ (Sources of hypothesis, Characteristics of a Good Research Hypothesis)	35-41
	खण्ड 3:चर एवं उनका मापन (Variables and their measurement)	
इकाई-7 इकाई-8 इकाई-9	चर का अर्थ एवं प्रकार (Meaning and Types of Variables) चरों का नियंत्रण (Control of Variables) मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का स्वरूप एवं प्रकार (Nature and Types of Psychological Tests	42-49 50-59 60-70

	खण्ड 4:प्रतिदर्शन प्रक्रिया एवं प्रविधियाँ (Process of Sampling and its Technique)	
इकाई-10	प्रतिदर्श का अर्थ, एक अच्छे प्रतिदर्श की विशेषता, प्रतिदर्श आकार एवं प्रतिदर्श की विश्वसनीयता (Meaning, characteristics, size and reliability of a good sample)	71-76
इकाई-11	संभाव्यता प्रतिदर्शन:- सरल एवं स्तरीकृत यादृच्छिकप्रतिदर्शन(Probability Sampling - Simple and Stratified Random Sampling)	77-83
इकाई-12	गैर संभाव्यता प्रतिदर्शन:-प्रासांगिक,कोटा एवं हिमकन्दु प्रतिदर्शन (Non-Probability Sampling:- Incidental, Quota and Snow Ball sampling)	84-88

इकाई-1 मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ एवं विशेषताएँ
(Meaning and Characteristics of Psychological Research)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ

1.4 मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताएँ

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अनुसंधान मानव ज्ञान को नई दिशा प्रदान करता है तथा उसे विकसित तथा परिमार्जित करता है। अनुसंधान ज्ञान के विविध पक्षों में गहनता तथा सूक्ष्मता प्रदान करता है। अनुसंधान अनेक नवीन कार्य विधियों को विकसित करता है, अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित विश्लेषण करने की अधिक तर्कयुक्त, व्यवस्थित, गहन प्रक्रिया है। अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त विशिष्ट अवस्था है। एडवर्डस कहते हैं कि-अनुसंधान किसी प्रश्न या समस्या या प्रस्तावित उत्तरों की जांच के लिए उत्तर खोजने हेतु किया जाता है। इस प्रकार अनुसंधान चतुर्दिक विकास का संवाहक होता है। अनुसंधान की यह विशेषता है कि वह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो मापन पर आधारित होता है। इसकी यह भी विशेषता है कि यह तथ्यपरक होता है, जिसे सतर्कता के साथ प्रतिवेदित किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान भी वैज्ञानिक ढ़ंग से किया जाता है। इसमें मनोविज्ञान सम्बन्धी अनुसंधानों के सम्प्रत्ययन, वर्गीकरण, प्रदत्त संग्रह की प्रक्रियाओं एवं अभिकल्पों का विवेचन किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि -

- अनुसंधान क्या है ?
- मनोवैज्ञानिक अनुसंधान क्या है?
- अनुसंधान की विशेषकर मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषता क्या होती है ?

1.3 मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ

मनोवैज्ञानिक शोध के अर्थ को स्पष्ट करने से पहले शोध या अनुसंधान क्या है, वैज्ञानिक शोध क्या है, इसे समझना आवश्यक है। वैसे तो अनुसंधान या शोध की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती है। सामान्यतया शोध का अर्थ किसी समस्या के निराकरण के लिए व्यक्ति निरपेक्ष विधियों के आधार पर समस्या का प्रासंगिक, विश्वसनीय, वैध तथा पक्षपात रहित उत्तर खोजना है।

जे डब्ल्यू बेस्ट के अनुसार- "शोध वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित विश्लेषण करने की तर्कयुक्त, व्यवस्थित गहन प्रक्रिया है। शोध वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त विशिष्ट अवस्था है।"

ए0एल0 एडवर्डस के अनुसार - *"शोध किसी प्रश्न या समस्या या प्रस्तावित उत्तरों की जाँच के लिए उत्तर खोजने हेतु किया जाता है।"*

करलिंगर का मत है कि - *"वैज्ञानिक अनुसंधान प्राकृतिक दृश्य विषयों के मध्य अनुमानित सम्बन्धों से सम्बन्धित परिकल्पनात्मक कथनों की व्यवस्थित, नियंत्रित, अनुभवजन्य तथा तार्किक खोज है।"*

पी0एम0 कुक के अनुसार- *"अनुसंधान एक दी गई समस्या से संदर्भित तथ्यों एवं उनके अर्थों या निहित तात्पर्यों की एक सत्यनिष्ठ, व्यापक एवं बौद्धिक खोज है।"* इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शोध व्यक्ति निरपेक्ष विधियों के आधार पर समस्या के समाधान के लिए अपनाई गई व्यवस्थित, तर्कसंगत एवं अनुभवजन्य प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया प्रत्येक अध्ययन विषय में शोध के लिए आवश्यक है।

वैज्ञानिक शोध के अर्थ को सपष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि किसी समस्या या प्रश्न का समाधान करने का क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ प्रयास ही वैज्ञानिक शोध कहलाता है। वैज्ञानिक शोध में शोधकर्ता नियंत्रित एवं आनुभविक शोध करता है। करलिंगर ने वैज्ञानिक शोध की परिभाषा करते हुए कहा है कि *"स्वाभाविक घटनाओं का क्रमबद्ध, नियंत्रित, आनुभविक एवं आलोचनात्मक अनुसंधान जो घटनाओं के बीच कल्पित सम्बन्धों के सिद्धान्तों एवं प्राक्कल्पनाओं द्वारा निर्देशित होता है को वैज्ञानिक शोध कहा जाता है।"* **बेस्ट एवं काहन** ने भी वैज्ञानिक शोध के अर्थ को स्पष्ट किया है- *"वैज्ञानिक शोध किसी नियंत्रित प्रेक्षण क्रमबद्ध, वस्तुनिष्ठ अभिलेख एवं विश्लेषण है, जिसके आधार पर सामान्यीकरण, नियम या सिद्धान्त विकसित किया जाता है तथा जिससे बहुत सारी घटनाओं, जो किसी खास क्रिया का परिणाम या कारण हो सकती है, को नियंत्रित कर उनके बारे में पूर्व कथन किया जाता है।"*

इस प्रकार इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि-वैज्ञानिक शोध के स्वरूप का मूल तथ्य यह है कि इसमें एक नियंत्रित प्रेक्षण होता है और इस तरह से प्रेक्षण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कोई नया सिद्धान्त या नियम विकसित किया जाता है। इसके अलावा भी वैज्ञानिक शोध की अनेक विशेषताएँ होती हैं।

अनुसंधान या वैज्ञानिक अनुसंधान के अर्थ स्पष्ट हो जाने के पश्चात अब मनोवैज्ञानिक शोध के अर्थ को अच्छी तरह से स्पष्ट किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक शोध- मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान को इस प्रकार भी स्पष्ट किया जा सकता है- मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र से सम्बन्धित किसी समस्या के निराकरण के लिए व्यक्ति निरपेक्ष/तर्कयुक्त पद्धति के आधार पर प्रासंगिक, विश्वसनीय, वैध, पक्षपात रहित तथा परखे जा सकने योग्य तथ्यों के एकत्रीकरण, परिणामों, के विवेचन एवं निष्कर्षों तक पहुँचने की समस्त प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक शोध कहा जा सकता है। **डी एमैटो** ने मनोवैज्ञानिक शोध को परिभाषित करते हुए कहा है कि - *"मनोवैज्ञानिक शोध के अंतर्गत मनोविज्ञान के क्षेत्र के भीतर की समस्याओं के बारे में किए गए सभी शोध को रखा जाता है।"* इस प्रकार मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में किए गए सभी तरह के शोध चाहे वह प्रयोगात्मक हों या अप्रयोगात्मक व मनोवैज्ञानिक शोध कहलाते हैं। मनोवैज्ञानिक शोध भी वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। इसमें व्यवहारों एवं क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों एवं उनके नियमों का निर्धारण किया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शोध वैज्ञानिक को मनोवैज्ञानिक या किसी क्षेत्र से सम्बन्धित हो उसे वैज्ञानिक पद्धति से खोजे गए उत्तर के रूप में समझा जा सकता है। शोध एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया होती है। यही निरंतरता विज्ञान की प्रगति का चरण है।

1.4 मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताएँ

किसी भी मनोवैज्ञानिक शोध में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं -

1. मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में प्रायः प्रायोगिक पद्धति का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। अतः अधिकांश मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप उच्च वैज्ञानिक स्तर का होता है।
2. मनोवैज्ञानिक शोध में बाह्यचरों के नियंत्रण की व्यवस्था रहती है।
3. मनोवैज्ञानिक शोधों में इस प्रकार के शोध अभिकल्प मनोवैज्ञानिकों द्वारा विकसित किए गए हैं जिनके आधार पर स्वतंत्र चर के प्रभाव को अन्य चरों के प्रभावों से अलग किया जा सकता है। इसमें विभिन्न चरों के पारस्परिक सम्बन्धों के वैज्ञानिक मूल्यांकन में भी पर्याप्त सहायता मिलती है।
4. मनोवैज्ञानिक शोधों में विशिष्ट सांख्यकीय विधियों का आँकड़ों के संकलन, विश्लेषण एवं विवेचन में उपयोग किया जाता है।
5. मनोवैज्ञानिक शोधों द्वारा प्राप्त तथ्यों, नियमों व सिद्धान्तों का स्वरूप पर्याप्त मात्रा में वैज्ञानिक होता है।

6. मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोवैज्ञानिक तथ्यों को मात्रात्मक रूप प्रदान करने से अधिकांश शोधों का स्वरूप विधि -अनुस्थापित रहता है। अतः उनमें वैज्ञानिक पद्धति का व्यापक उपयोग किया जाता है।

7. मनोवैज्ञानिक मूलभूत शोधों का स्तर अत्यन्त उच्च वैज्ञानिक होता है।

8. मनोवैज्ञानिक शोध प्रायः उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया (एस0ओ0आर0) से सम्बन्धित रहता है।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप शोध, वैज्ञानिक शोध एवं मनोवैज्ञानिक शोध के अर्थ के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताओं के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। शोध या अनुसंधान वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित विश्लेषण करने की अधिक तर्कयुक्त, व्यवस्थित गहन प्रक्रिया है। शोध वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त विशिष्ट अवस्था है। इसी प्रकार वैज्ञानिक शोध प्राकृतिक दृश्य विषयों के बीच अनुमानित सम्बन्धों से सम्बन्धित परिकल्पनात्मक कथनों की व्यवस्थित, नियंत्रित, अनुभवजन्य तथा तार्किक खोज है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान जिसमें मनोविज्ञान के क्षेत्र के भीतर की समस्याओं के बारे में किए गए सभी प्रकार के शोध को रखते हैं। मनोविज्ञान में चूँकि जीवित प्राणियों के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है, इसलिए मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान या शोध की अनेक विशेषताएँ होती है। अधिकतर मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप उच्च वैज्ञानिक स्तर का होता है। मनोवैज्ञानिक शोधों में अधिकांशतया प्रयोग पद्धति का उपयोग किया जाता है। इसमें तथ्यों के विश्लेषण हेतु उच्च स्तर की सांख्यिकीय प्रविधियों का उपयोग किया जाता है।

1.6 शब्दावली

- शोध अनुसंधान : शोध सत्य को खोजने की व पद्धति है जो तर्कपूर्ण चिन्तन की विधि द्वारा की जाती है। यह समस्या के निराकरण हेतु अपनाई गई वैज्ञानिक पद्धति है।
- वैज्ञानिक शोध : यह प्राकृतिक गोचरों से पूर्व कल्पित सम्बन्धों के बारे में परिकल्पनात्मक कथनों का क्रमबद्ध, नियंत्रित इन्द्रियानुभविक और आलोचनात्मक खोज है।
- गोचर : गोचर वह है जिसका हम प्रत्यक्षीकरण करते हैं और जो प्रकृति के किसी क्षेत्र एवं मानवीय व्यवहारों से सम्बन्धित होता है। गोचर को ही सबके लिए एक रूप में प्रत्यक्ष हो जाने पर तथ्य कहा जाता है।
- इन्द्रियानुभविक : इससे तात्पर्य अनुभवगम्य होना है। ज्ञान वैज्ञानिक तभी होता है जब वह अनुभव की कसौटी पर खरा उतरता है।
- मनोवैज्ञानिक शोध : इस माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। यह वैज्ञानिक ढ़ंग से किया जाता है।

1.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. शोध वैज्ञानिक पद्धति की अत्यन्त ------ अवस्था है।
2. किसी समस्या या प्रश्न का समाधान करने का ------एवं वस्तुनिष्ठ प्रारूप ही वैज्ञानिक शोध है।
3. मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के --- एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप को समझते हैं।
4. मनोवैज्ञानिक शोध भी ------ से किया जाता है।
5. मनोवैज्ञानिक शोध में प्रायः ----- का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।
6. मनोवैज्ञानिक शोध प्रायः ---- से सम्बन्धित रहता है।

उत्तर: 1)विशिष्ट 2) क्रम बद्ध 3) व्यवहारों 4) वैज्ञानिक ढ़ंग

5) प्रयोग पद्धति 6) उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **कपिल, डा0 एच0 के0** (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, जयगोपाल** (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य** (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **सिंह, अरूण कुमार** (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक शोध का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. मनोवैज्ञानिक शोध की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई-2 मनोवैज्ञानिक शोध: स्वरूप एवं क्षेत्र
(Psychological Research: - Nature and Scope)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप

2.4 मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

अनुसंधान किसी विशिष्ट प्रश्न के महत्व पर आधारित होकर प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तरों के लिए अपेक्षित विषय सामग्री के एकत्रीकरण के लिए अपनाई गई विधियों के स्वरूप पर आधारित है। यदि प्रश्न के उत्तर हेतु व्यक्ति निरपेक्ष, पक्षपात रहित विधियों को अपनाया गया है तभी इस समस्त प्रक्रियाओं को अनुसंधान या शोध कहा जा सकता है। व्यक्ति निरपेक्ष विधियाँ ही ऐसा साधन हैं जिनका प्रयोग कोई भी व्यक्ति कर सकता है और पूर्व अध्ययनों को परख कर सकता है। वास्तव में शोध कभी न समाप्त होने वाली निरन्तर प्रक्रिया है। यही निरन्तरता विज्ञान या मनोविज्ञान की प्रगति का सोपान है। अनुसंधान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए क्लिफर्ड वुडी का मत है कि - "अनुसंधान सत्य को खोजने की वह पद्धति है जो तर्कपूर्ण चिन्तन की विधि द्वारा की जाती है।" इस प्रकार समस्त विवेचना से स्पष्ट है कि अनुसंधान समस्या के निराकरण हेतु अपनाई गयी वैज्ञानिक पद्धति है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है जो विज्ञान के प्रगति की दिशा निर्देशिका है।

मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। इन्द्रियानुभविक ढ़ंग से मनोवैज्ञानिक जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे कि-

- मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप क्या है।
- मनोवैज्ञानिक शोध के कौन-कौन से क्षेत्र हैं।

2.3 मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप

मनोविज्ञान के अंतर्गत जीवित प्राणी के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं का उद्देश्यपूर्ण ढ़ंग से वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। जिस प्रकार से अन्य विज्ञानों में समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार मनोविज्ञान में भी वैज्ञानिक विधियों का प्राणियों के समस्त व्यवहारों के अध्ययन के लिए उपयोग किया जाता है। इस प्रकार जो वैज्ञानिक शोध का स्वरूप होता है वही मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने समस्त विषयों में अनुसंधान के लिए एक मानदण्ड निश्चित किया है। इस मानदण्ड को भारत के समस्त विश्वविद्यालय अपनाते हैं। अनुसंधान प्रबन्ध के मापदण्ड को यहाँ दिया जा रहा है - "अनुसंधान कार्य ऐसा अवश्य होना चाहिए कि उसमें या तो नये तथ्यों को प्रकाश में लाया गया हो या तथ्यों या सिद्धान्तों की नयी व्याख्या की गई हो। किसी भी दशा में शोध प्रबन्ध को अभ्यर्थी की आलोचनात्मक परीक्षण एवं निर्णय की क्षमता का साक्षी होना वांछनीय है। अनुसंधान प्रबन्ध को जहाँ तक साहित्यिक प्रस्तुति का प्रश्न है संतोषजनक होना चाहिए" इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुसंधान के दो लक्ष्य होते हैं – 1) नये तथ्यों का अविष्कार और 2) ज्ञात तथ्यों एवं प्रचलित सिद्धान्तों को नये दृष्टि से व्याख्या। वैज्ञानिक शोध का स्वरूप और विशिष्ट होता है। चूँकि मनोविज्ञान भी एक विज्ञान है और सभी विज्ञानों में किए जाने वाले शोध को वैज्ञानिक शोध माना जाता है। वैज्ञानिक शोध में भी नए तथ्यों का अविष्कार या ज्ञात तथ्यों एवं प्रचलित सिद्धान्तों की नयी व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। लेकिन वैज्ञानिक शोध के लिए आवश्यक है कि वह इन्द्रियानुभविक चक्र का अनुसरण करती हो। इस बात को ध्यान में रखते हुए मनोवैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक शोध की परिभाषा की है। आगे दी जा रही परिभाषा से वैज्ञानिक शोध के स्वरूप एवं विशेषताओं को स्पष्ट किया जा सकता है।

कर्लिंगर के अनुसार - *"वैज्ञानिक अनुसंधान प्राकृतिक गोचरों से पूर्वकल्पित सम्बन्धों के बारे में परिकल्पनात्मक कथनों का क्रमबद्ध, नियंत्रित, इन्द्रियानुभविक और आलोचनात्मक अन्वेषण हैं।"*

उपर्युक्त परिभाषा में गोचर पद महत्वपूर्ण है। गोचर वह है जिसका हम प्रत्यक्षीकरण करते हैं। गोचर को ही सबके लिए एक रूप में प्रत्यक्ष हो जाने पर तथ्य कहते हैं। अतः वैज्ञानिक शोध का केन्द्र बिन्दु हमारे जगत के तथ्य हैं। उपर्युक्त परिभाषा का एक दूसरा पद गोचरों में पूर्वकल्पित सम्बन्ध होता है। प्रकृति, परिवेश, समाज और मनुष्य के व्यवहारों में जो घटनाएं होती हैं उनके बीच पारस्परिक सम्बन्ध होता है। इस जगत् में होने वाले गोचरों में प्रकार्यात्मक सम्बन्ध होता है। इन्हीं सम्बन्धों की खोज एवं निर्धारण वैज्ञानिक शोध है। वैज्ञानिक शोध इन्द्रियानुभविक आधार पर की जाती है। इन्द्रियानुभविक से तात्पर्य है अनुभवगम्य। ज्ञान वैज्ञानिक तभी होता है जब अनुभव की कसौटी पर खरा उतरता है। जब क्रमबद्ध ढंग से इन्द्रियानुभविक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है तब उसे वैज्ञानिक अनुसंधान माना जाता है।

वैज्ञानिक शोध के स्वरूप का विवेचन करते हुए स्पष्ट किया गया है कि समस्त प्रकार के गोचरों का इन्द्रियानुभविक अध्ययन शोध है। जो गोचर पूरी तरह प्रमाणित हो जाता है और जिसका स्वरूप निश्चित हो जाता

है तो उसे तथ्य मान लेते हैं । वैज्ञानिक के लिए कोई भी कथन उस स्थिति में तथ्य हो जाता है जब उसका इन्द्रियानुभविक सत्यापन हो जाता है। इन तथ्यों का इन्द्रियानुभविक परीक्षण कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

मनोवैज्ञानिक शोध के माध्यम से मनुष्य के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप, उनमें निहित क्रियातंत्रों तथा उनके निर्धारकों का पता लगाया जाता है। मनोवैज्ञानिक भी विज्ञान के अभिग्रहों, उद्देश्यों और उपागमों को स्वीकार करता है। वह इन्द्रियानुभविक विधि से मनोवैज्ञानिक जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। मानव के व्यवहारों का प्रेक्षण एवं मापन करता है। मानसिकक्रियाओं का इन्द्रियानुभविक रूप से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। उद्दीपक और अनुक्रिया या निवेश और निर्गम का प्रत्यक्ष प्रेक्षण कर उनके बीच घटित होने वाली मानसिक क्रियाओं के स्वरूप और कारकों का अनुमान लगाया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक शोध की विषयवस्तु अत्यन्त जटिल और परिवर्तनशील होती है। किसी भी व्यवहार या मानसिक क्रिया को उत्पन्न करने वाले अनेक कारक होते हैं, जिसके नियंत्रण में कठिनाई तो होती है, लेकिन इनका नियंत्रण भी किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की वैज्ञानिक विधियों का विकास किया है।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में किसी भी समस्या को लेकर जो शोध किए जाते हैं उनके कुछ निश्चत सोपान होते हैं । इन सोपानों का अनुपालन मनोवैज्ञानिक शोधों में होता है। विद्वानों ने कई प्रकार से शोध के चरणों की व्याख्या की है। जहोदा आदि ने शोध के मुख्य चरण सात बतलाए हैं। इन चरणों से गुजरने पर किसी भी शोध की वैधता तथा निर्भरता काफी बढ़ जाती है। इन सभी चरणों या अवस्थाओं का अनुपालन मनोवैज्ञानिक शोधों में भी किया जाता है।

2.4 मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र

मानव जीवन के अक्सर सभी क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक शोध की जरूरत पड़ रही है। औद्योगिक, व्यावसायिक, सैनिक चिकित्सा, शिक्षा जैसे क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक शोध की काफी प्रगति हुई। मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे अधिगम, अभिप्रेरणा, सम्प्रत्यय अधिगम, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, चिन्तन आदि में अनेक वैज्ञानिक तथा सैद्धान्तिक अध्ययन हो रहे हैं । इस प्रकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में न केवल व्यवहारिक समस्याओं के समाधान के लिए ही गहन शोध हो रहे हैं बल्कि सैद्धान्तिक शोध भी व्यापक स्तर पर हो रहे हैं । मनोवैज्ञानिक तथ्यों, सिद्धान्तों तथा नियमों की खोज में मनोवैज्ञानिक पशुओं तथा पक्षियों के व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययनों को महत्वपूर्ण सफलताएँ मिली है। आज शैक्षिक एवं सामाजिक समस्या को लेकर मनोवैज्ञानिकों द्वारा बड़ी संख्या में शोध किए जा रहे हैं । समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा बालक के सामाजीकरण, सामाजिक अंतः क्रियाओं, समूह प्रतिक्रियाओं, समूह संरचना, समूह प्रभाव, नेतृत्व, अभिवृत्ति, प्रेरणा आदि का अध्ययन तो किया ही जा रहा है साथ ही किस प्रकार संस्कृति बच्चे के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करती है, वैयक्तिक भिन्नताएँ कैसे अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं इनका भी व्यापक रूप से अध्ययन हो रहा है। औद्योगिक क्षेत्र में कर्मचारियों के चयन से लेकर कैसे उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों को बढ़ावा दिया जा सकता है, औद्योगिक संघर्ष को कैसे समाप्त किया जा सकता है आदि का भी मनोवैज्ञानिक शोध हो रहा है। आज नित्य नये क्षेत्र मनोवैज्ञानिक शोध के बनते जा रहे हैं ।

मनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में शोधकर्ता विशेष रूप से तीन चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है -

1. उद्दीपक चर
2. प्राणी चर
3. अनुक्रिया चर

अनुक्रिया चर का सम्बन्ध जीव की किसी भी क्रिया या व्यवहार से होता है। जैविक चर का सम्बन्ध जीव की विशेषताओं से होता है। उद्दीपक चर के अंतर्गत कभी-कभी जीव की विशेषताएँ भी आती हैं। उद्दीपक चरों को अनुक्रियाओं का कारक मानते हैं। उद्दीपक को उद्दीपक निवेश के नाम से भी जानते हैं। इसे उद्दीपक संकेत या सूचना निवेश का भी नाम दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में अक्सर उद्दीपक चर तथा जैविक चर के सम्मिलित प्रभाव से प्रयोज्य की अनुक्रिया प्रभावित होती है। जिसका मापन व अध्ययन करना शोधकर्त्ता का उद्देश्य होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र व्यापक है। मनोवैज्ञानिक शोध की किसी भी स्थिति को उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया (एस-ओ-आर) इन तीन सम्प्रत्ययों के अंगर्तत विभक्त कर मनोवैज्ञानिक जिस प्रकार की सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता या अभिनति को लेकर अपना शोध करना चाहे तो शोध प्रारूप की रूपरेखा तैयार कर सकता है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान चुके होंगे कि मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप एवं क्षेत्र क्या है। डी एमैटो ने मनोवैज्ञानिक शोध को परिभाषित करते हुए कहा है कि "मनोवैज्ञानिक शोध के अंतर्गत मनोविज्ञान के क्षेत्र के भीतर की समस्याओं के बारे में किए गए सभी तरह के शोध को रखा जाता है।" मनोवैज्ञानिक शोधों का स्वरूप वैज्ञानिक होता है। इसमें प्राणी के व्यवहारों एवं मानसिक क्रियाओं के स्वरूप उनमें निहित क्रियातंत्रों एवं उनके नियमों का निर्धारण किया जाता है। मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। मानव जीवन के अक्सर सभी क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक शोध की आज आवश्यकता पड़ रही है। मनोवैज्ञानक शोध के क्षेत्र में शोधकर्त्ता विशेष रूप से उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया इन तीन चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

2.6 शब्दावली

- **मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप**: जिस प्रकार से अन्य विज्ञानों में समस्याओं के अध्याय में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है उसी प्रकार मनोविज्ञान में भी विभिन्न समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार जो वैज्ञानिक शोध का स्वरूप होता है वही मनोवैज्ञानिक शोध का स्वरूप है।
- **मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र**:मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र व्यापक है। प्राणी के समस्त व्यवहारों का अध्ययन इसमें होता है। शोधकर्त्ता विशेष रूप से उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया इन तीन चरों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक शोधों में करता है।

2.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) मनोविज्ञान के अंतर्गत ------- के व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

2) वैज्ञानिक शोध का ------- हमारे जगत के तथ्य हैं।

3) समस्त प्रकार के गोचरों का ------- शोध है।

4) अनुक्रिया चर का सम्बन्ध ------- किसी भी क्रिया या व्यवहार से होता है।

5) उद्दीपक चर एवं जैविक चर के सम्मिलित प्रभाव से प्रयोज्य की अनुक्रिया प्रभावित होती है। सत्य/असत्य

उत्तर: 1. जीवित प्राणियों 2. केन्द्रबिन्दु 3. इन्द्रियानुभविक अध्ययन 4. जीव की 5.सत्य

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology.

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक शोध के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. मनोवैज्ञानिक शोध के क्षेत्र का वर्णन कीजिए।

इकाई-3 मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

(Historical Perspective of Psychological Research)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

वास्तव में वैज्ञानिक ज्ञान का इतिहास विज्ञान के विकास के साथ जुड़ा हुआ है, जबकि प्रायः शोध का इतिहास लगभग उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। साधारण शोध से लेकर वैज्ञानिक शोध तक का इतिहास एक बहुत लम्बा इतिहास है। अतः वैज्ञानिक शोध या मनोवैज्ञानिक शोध के विकास के इतिहास को ठीक प्रकार से समझने के लिए सम्पूर्ण शोध के इतिहास का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण अत्यन्त तर्कसंगत व आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे कि -

- शोध का उद्गम कब हुआ।
- शोध के विकास से सम्बन्धित विभिन्न ऐतिहासिक काल।
- सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक शोध की स्थिति।

3.3 मनोवैज्ञानिक शोध का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

शोध का उद्गम एक ऐसे शब्द से हुआ है जिसका अर्थ सब दिशाओं में जाना या खोज करना होता है। वैसे भी Research शब्द स्वयं ही दो शब्दों Re तथा Search(Re+Search) से मिलकर बना है। अतः सम्पूर्ण शब्द 'Research' से एक ऐसे सम्मिलित अर्थ का बोध होता है जिसका उद्देश्य खोज की पुनरावृत्ति होता है।

आदिकाल में आश्चर्य जनक घटनाओं की व्याख्या मानव ने सम्भवतः पहले जादू के आधार पर की। इसके पश्चात फिर उनकी व्याख्या सम्भवतः दैविक इच्छा के आधार पर की गई और धीरे-धीरे इन नई कल्पनाओं व धारणाओं से मानव ज्ञान अर्जन की विधि को दार्शनिक विचार धाराएँ मिलीं और चिन्तन में निगमनात्मक तर्क का उदय हुआ। कुछ समय तक इस प्रकार की विचारधारा प्रभावशाली रही । परन्तु इस विचारधारा में भी आगे चलकर परिवर्तन आया और संशयवाद जागृत हुआ, जिससे परम्परागत धार्मिकशास्त्र पद्धति तथा ईश्वरपरक हठ मतों को धक्का लगा और इसका परिणाम हुआ कि मानव चिन्तन में इन्द्रियनुभव वाद का युग आया । यह एक पुनर्जागरण का काल था इससे मानव के चिन्तन में एक नई बौद्धिक चेतना जागृत हुई । इससे प्रकृतिवादी उपागम का उद्गम हुआ ।

आगे चलकर शोध पर विकासवाद के सिद्धान्त का प्रभाव पड़ा। यह युग विज्ञान के प्रगति का युग था । इसमें डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने मानव चिन्तन और अन्वेषण को एक नई दिशा प्रदान की और परिकल्पना आधारित निगमनात्मक विधि का विकास हुआ। इस विचारधारा से प्रभावित होकर अगस्त काम्टे ने समाज विज्ञान के अध्ययन में प्रत्यक्षवाद को अपनाया । इमाइल दुर्खीम ने समाज विज्ञान में विषयपरक अध्ययन पद्धति को प्रधानता प्रदान की । मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारवादी विचारधारा का प्रवेश हुआ। मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त में मानव व्यवहार के विश्लेषण में नियत तत्ववाद के नियम को प्रतिपादित किया । यह सभी नई तथा प्रबल पद्धतियाँ मनुष्य के चिन्तन, अध्ययन व शोध के जगत में वैज्ञानिक विचारधारा की प्रतीक थी। अनुसंधान के क्षेत्र में इस चिन्तन पद्धति का यह प्रभाव पड़ा कि शोध के प्रक्रिया में वैज्ञानिक उपागम तथा वैज्ञानिक पद्धति को बल दिया जाने लगा । इसके कारण सामाजिक एवं मनोवैज्ञानक घटनाओं का अध्ययन मात्रात्मक विधि के आधार पर होने लगा । आगे चलकर मानव के व्यवहार के विश्लेषण में गणितीय नियमों का प्रतिपादन ब्राउन के क्षेत्र सैद्धान्तिक नियम, ऐश एवं शेरिफ के घटना क्रम के उपागम इसी विचार धारा की देन है। शोध के क्षेत्र में फिशर आदि ने प्रायोगिक प्रारूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों में शोधों में सांख्यिकीय विधियों का उपयोग जहोदा, यंग, गुडे एवं हाट ने करना शुरू किया । डैमिन्ग, हन्सेन आदि ने शोध के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रतिचयन विधियों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इतना ही नहीं इन लोगों ने शोध पद्धति को वैज्ञानिक तथा प्रायोगिक विधि के व्यापक उपयोग को विशेष स्तर प्रदान किया। शोध के क्षेत्र में प्रायोगिक विधि के उपयोग से ही वैज्ञानिक शोध की उत्पत्ति हुई है।

आज सामाजिक विज्ञानों में भी वैज्ञानिक अनुसंधान अन्य विज्ञानों की भॉति होने लगा है। मनोविज्ञान में तो विशेषतः समस्याओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक उपागमों का अधिकाधिक रूप से उपयोग हो रहा है। प्रायोगिक पद्धति जो एक वैज्ञानिक पद्धति है, इसका अधिकाधिक उपयोग मनोवैज्ञानिक शोधों में हो रहा है।

3.4 सारांश

मनोवैज्ञानिक शोध में फिशर आदि ने प्रायोगिक प्रारूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। जहोदा, यंग, गुडे एवं हाट आदि ने सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकीय विधियों का उपयोग कर शोध को वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयास किया।

इतना ही नहीं इन लोगों ने शोध के क्षेत्र में प्रायोगिक विधि के उपयोग करके वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। आज मनोवैज्ञानिक शोधों में अधिकाधिक रूप से वैज्ञानिक उपागमों और वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग होने लगा है।

3.5 शब्दावली

- **वैज्ञानिक उपागम:** अनुसंधान की ऐसी पद्धति जिसमें कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड अपनाये जाते हैं, उसे वैज्ञानिक पद्धति न कहकर वैज्ञानिक उपागम कहते हैं।
- **वैज्ञानिक पद्धति :** कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड पर प्रायोगिक पद्धति को ही वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं।

3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड ------ को ही वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं।
2. मनोवैज्ञानिक शोध में ----- आदि ने प्रायोगिक प्रारूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया।
3. विकासवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया?

   1) डार्विन 2) गुडे एवं हाट 3) फिशर 4) जहोदा

उत्तर: 1-प्रायोगिक पद्धति 2-फिशर 3- डार्विन

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **कपिल, डा0 एच0 के0** (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, जयगोपाल** (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य** (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- **सिंह, अरूण कुमार** (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P.K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F. J. (1990) : Experimental Psychology.

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक शोध के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन कीजिए।
2. टिप्पणी लिखिए: 1- वैज्ञानिक उपागम 2- वैज्ञानिक पद्धति

इकाई-4 शोध समस्या की परिभाषा एवं चयन की कसौटियाँ
(Definition and criteria of selecting a Research Problem)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शोध समस्या की परिभाषा

4.3.1 शोध समस्या की विशेषताएँ

4.4 शोध समस्या के स्रोत

4.4.1 समाधान-योग्य बनाम असमाधान-योग्य समस्या

4.5 उपयुक्त समस्या चयन की कसौटियाँ

4.5.1 समस्या का समाधान योग्य होना

4.5.2 समस्या का परीक्षण योग्य होना

4.5.3 समस्या का समाधान आनुभविक प्रदत्त पर आधारित होना

4.5.4 समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना

4.5.5 समस्या का नवीन होना

4.5.6 समस्या का सैद्धान्तिक मूल्य होना

4.5.7 समस्या का सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व होना

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

किसी भी शोध की शुरूआत समस्या से हाती है। यदि समस्या न हो तो शोध की आवश्यकता नहीं होगी। इसीलिए कहा भी गया है कि समस्या शोध की आधारशिला है। प्रस्तुत इकाई में शोध समस्या को परिभाषित कर उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है, समस्या के स्रोतों की चर्चा की गई है तथा एक उपयुक्त समस्या चयन की कसौटियों को उजागर किया गया है।

इस इकाई का अध्ययन आपको मनोविज्ञान के क्षेत्र में शोध प्रारंभ करने, शोध समस्या का चयन करने एवं सबसे बढ़कर, नये दृष्टिकोण पैदा करने में सहायक होगा।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

- शोध समस्या को परिभाषित कर उसकी विशेषताएँ बता सकें।
- शोध समस्या के विभिन्न स्रोतों पर चर्चा कर सकें।
- समाधान होने योग्य एवं समाधान नहीं होने योग्य समस्याओं में अन्तर स्थापित कर सकें एवं
- एक उपयुक्त शोध समस्या की कसौटियों को रेखांकित कर सकें।

4.3 शोध समस्या की परिभाषा

किसी भी शोध के लिए सबसे पहले किसी-न-किसी समस्या का होना आवश्यक है क्योंकि किसी समस्या या प्रश्न का समाधान करने का क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ प्रयास ही वैज्ञानिक शोध है। दो या दो से अधिक चरों के बीच सम्बन्ध के बारे में जो प्रश्न पूछा जाता है उसे ही समस्या कहते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए करलिंगर (2002) ने कहा है- ''समस्या वह प्रश्नवाचक वाक्य या कथन है, जो यह पूछता है कि दो या अधिक चरों क बीच कैसा सम्बन्ध है?'' इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि एक शोधकर्ता यह जानता है कि व्यक्ति के निष्पादन पर परिमाण के ज्ञान का क्या प्रभाव पड़ता है? यहाँ निष्पादन एक आश्रित चर के रूप में कार्य कर रहा है तथा परिणाम का ज्ञान एक स्वतंत्र चर के रूप में। यदि इसे समस्या का रूप देना चाहें तो स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के सम्बन्ध को दर्शाते हुए इस प्रकार लिखेंगे-'' एक प्रयोग द्वारा व्यक्ति के निष्पादन पर परिणाम के ज्ञान के प्रभाव को दर्शाना''। टाउनसेण्ड ने भी शोध समस्या को परिभाषित करते हुए कहा है ''समस्या एक ऐसा प्रश्नात्मक कथन है जिसमें एक समस्या के समाधान को प्रस्तावित किया जाता है।

4.3.1 शोध समस्या की विशेषताएँ -

स्पष्ट है कि समस्या एक कथन है। इस कथन की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

1) समस्या कथन की अभिव्यक्ति प्रश्नवाचक वाक्य द्वारा होती है। ऐसा वाक्य बिल्कुल ही स्पष्ट शब्दों में लिखा जाता है। उदाहरणस्वरूप, क्या व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि का सम्बन्ध उसके कक्षा निष्पादन से है? व्यक्ति के जन्म-

क्रम का उसकी निर्भरता-उन्मुखता से क्या सम्बन्ध है? क्या आधुनिकता और जीवन तुष्टि एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं? विद्यालय प्रकार से शिक्षकों की कार्य-तुष्टि का क्या सम्बन्ध हैं?

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि शोध समस्या की अभिव्यक्ति एक प्रश्नवाचक कथन के रूप में होती है। यानी, कथन के द्वारा प्रश्न पूछा जा रहा होता है जिसका उत्तर शोध करने के बाद ही दिया जा सकता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शोध समस्या की अभिव्यक्ति प्रश्नवाचक रूप में न करके साधारण रूप में कर दी जाती है, परन्तु इसका प्रचलन कम है।

2) शोध कथन द्वारा दो या दो से अधिक चरों के बीच के संबंध की अभिव्यक्ति होती है। इसका मतलब यह हुआ कि शोध समस्या के कथन की अभिव्यक्ति करने के पहले शोधकर्ता को चरों के बारे में एक निर्णय लेना पड़ता है। जैसे, उपर्युक्त उदाहरण में पहले कथन में कक्षा निष्पादन तथा बुद्धि लब्धि दो चर हैं। दूसरे कथन में जन्म-क्रम तथा निर्भरता-उन्मुखता दो चर हैं। इसी प्रकार तीसरे कथन में आधुनिकता और जीवन-तुष्टि दो चर हैं। चरों की पहचान कर लेने के बाद दोनों के बीच एक विशेष संबंध की उक्ति की जाती है।
3) शोध समस्या का कथन ऐसा होना चाहिए जिसे आनुभविक विधियों से जाँच किया जाना संभव हो। दूसरे शब्दों में शोध समस्या का कथन ऐसा होना चाहिए कि उसके चरों की माप आँकड़ों का संग्रह करके किया जाना संभव हो सके।

इन प्रमुख विशेषताओं के अलावा कुछ और भी वांछनीय विशेषताएँ बतलाई गयी हैं जिनसे शोध समस्या का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। ऐसी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

1) किसी शोध समस्या को नैतिक मूल्यों से या निर्णयों से संबंधित नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसी शोध समस्याओं का अध्ययन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हैं। जैसे, क्या विधवा-विवाह सम्पन्न होना चाहिए? क्या व्यक्ति को सभी परिस्थितियों में झूठ बोलना चाहिए? आदि कुछ ऐसे प्रश्नात्मक कथन हैं जिनका अध्ययन करना काफी कठिन हैं।
2) शोध समस्या को वैज्ञानिक होने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका संबंध महत्वपूर्ण विषयों या घटनाओं से हो न कि तुच्छ विषयों या घटनाओं से। शोध समस्या का स्वरूप ऐसा भी होना चाहिए कि उसे जाँच करने में अत्यधिक समय या धन का व्यय न हो।
3) शोध समस्या को न तो अत्यधिक सामान्य और न ही अत्यधिक विशिष्ट होना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, शोध समस्या का कथन जैसे, क्या सर्जनात्मकता व्यक्ति की आत्म-यथार्थता द्वारा प्रभावित होती है, एक अत्यधिक सामान्य समस्या का उदाहरण है। इस ढंग की शोध समस्या की जाँच नहीं की जा सकती है। इसलिए वैज्ञानिक रूप से यह एक अर्थहीन समस्या बन जाती है। इस सम्बन्ध में करलिंगर ने भी हा है कि ''अगर समस्या अत्यधिक सामान्य है तो वह इतनी अस्पष्ट हो जाती है कि उसकी जाँच नहीं की जा सकती है। यानी, वैज्ञानिक रूप से वह अर्थहीन हो जाती है।'' उसी तरह से यदि कोई समस्या अत्यधिक विशिष्ट हो जाती है तो वह भी शोध के दृष्टिकोण से बेकार एवं अर्थहीन हो जाती है क्योंकि ऐसी शोध समस्या के अध्ययन से कोई अर्थपूर्ण सामान्यीकरण नहीं हो पाता है। करलिंगर (1986) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''शायद अत्यधिक विशिष्टता अत्यधिक सामान्यता से भी बड़ा खतरा है।''

4.4 शोध समस्या के स्रोत

एक वैज्ञानिक समस्या का प्रतिपादन निश्चित रूप से किसी भी शोधकर्ता के लिए एक कठिन कार्य होता है। फिर भी वह अपने इस कठिन कार्य को आसान बनाने के लिए कुछ ऐसे स्रोतों का सहारा लेता है जिनसे उसे शोध समस्या का प्रतिपादन करना काफी आसान हो जाता है। ऐसे स्रोतों में निम्नांकित स्रोत काफी प्रमुख हैं-

1. शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों द्वारा अनुभव की गई प्रमुख समस्याओं का अध्ययन कर शोधकर्ता एक प्रमुख शोध समस्या का प्रतिपादन कर सकता है। उदाहरणस्वरूप, आजकल छात्र उपद्रव एक महत्वपूर्ण समस्या है जिससे स्कूल तथा कॉलेज के शिक्षक और यहाँ तक कि अभिभावकगण भी काफी परेशान हैं। अतः यह विषय शोध का एक महत्वपूर्ण अंग बन सकता है। एक शोधकर्ता इससे कई तरह की शोध समस्या का सूत्रीकरण कर सकता है, जैसे- उपद्रव में किस तरह के छात्र अधिक हिस्सा लेते हैं? उनका प्रमुख व्यक्तित्व शील गुण कौन-कौन सा होता है? किस उम्र-समूह में उपद्रव अधिक होता है? क्या छात्र-उपद्रव का सम्बन्ध सामाजिक आर्थिक स्थिति से भी है, आदि-आदि।
2. सफल शोधकर्ता एक वैज्ञानिक शोध समस्या का प्रतिपादन करने के लिए पाठ्य पुस्तक, शोध जर्नल आदि भी सावधानीपूर्वक पढ़ता है। बहुत से प्रकाशित शोध पत्र ऐसे होते हैं जिनमें लेखक संभावित शोध समस्या की ओर संकेत करता है। इतना ही नहीं, कुछ पाठ्य पुस्तकों एवं शोध जर्नल में कुछ वैसे प्रविधियों एवं कार्यविधियों का भी उल्लेख रहता है जिनसे शोध की नयी समस्या की झलक तो मिलती है, साथ-ही-साथ उनको सुलझाने में शोधकर्ता को विशेष सहायता मिलती है।
3. शोधकर्ता किसी वैज्ञानिक शोध समस्या का प्रतिपादन करने के लिए शोध प्रोफेसर, विशेषज्ञ आदि से भी सलाह करते हैं।
4. समाज में होने वाले नये-नये परिवर्तनों तथा शैक्षिक नवीनता से भी शोधकर्ता को कुछ शोध समस्याएँ मिल जाती हैं। जैसे आधुनिक युग में कम्प्यूटर का प्रयोग अत्यधिक हो रहा है। अतः इससे संबंधित कुछ शोध समस्या शोधकर्ता को आसानी से मिल जाती हैं।
5. कभी-कभी किसी अध्ययन-विषय के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनके बारे में वैज्ञानिक जानकारी की पूर्णतः कमी होती है! सामान्यतः ऐसे क्षेत्र वे होते हैं जिनके संबंध में अभी तक किसी प्रकार का शोध नहीं किया गया है। जब ऐसे क्षेत्र के विषयों के बारे शोधकर्ता के मन में कुछ जिज्ञासा उठती है तो वह कुछ प्रश्नों को अपने सामने रखता है और इससे शोध समस्या की उत्पत्ति होती है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में पारा मनोविज्ञान एक इसी श्रेणी का क्षेत्र है जहाँ शोध कार्य न के बराबर अभी तक हुए हैं। अतीद्रिय प्रत्यक्षण भी मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें अब तक काफी कम शोध हुए हैं अतः इस क्षेत्र में अनेकों तरह की शोध समस्याएँ मौजूद हैं।
6. शोध समस्या की उत्पत्ति परस्पर विरोधी शोध उपलब्धियों की परिस्थिति से भी होती पायी गयी है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक शोध समस्या पर किये गये दो या दो से अधिक पृथक-पृथक शोधों के परिणाम एक-दूसरे से भिन्न एवं विपरीत हो जाते हैं। शोधकर्ता के लिए ऐसी परिस्थिति में समस्या यह उत्पन्न हो जाती है कि वह किस परिणाम को सही माने। इसके निराकरण के लिए उसे एक नया शोध करना पड़ जाता है। परस्पर विरोधी शोध परिणाम का सबसे अच्छा उदाहरण हमें सीखने के क्षेत्र में मिलता है। उदाहरणस्वरूप, टॉलमैन तथा उनके अनेकों सहयोगियों ने अपने प्रयोगों के आधार पर बतलाया कि

सीखने के लिए पुनर्बलन की आवश्यकता नहीं होती है जबकि हल, थॉर्नडाइक, पैवलव, स्किनर आदि मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर बतलाया कि सीखने की प्रक्रिया पुनर्बलन के अभाव में संभव नहीं है। इस परस्पर विरोधी शोध परिणाम के कारण अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने सच्चाई जानने के लिए शोध किये हैं जिसका मनोविज्ञान का इतिहास साक्षी है।

बेस्ट एवं काह्न (1992) ने शोध समस्या की उत्पत्ति के साठ स्रोतों का वर्णन किया है जिसमें प्रमुख निम्नांकित हैं-

1. कार्यक्रमित निर्देश
2. टेलीविजन निर्देश
3. टीम प्रशिक्षण
4. घरेलू नीतियाँ एवं अभ्यास
5. पाठ्येतर कार्यक्रम
6. खुला वर्ग
7. पाठ्य पुस्तक
8. स्वतंत्र अध्ययन कार्यक्रम
9. यौन शिक्षा
10. विशेष शिक्षा
11. केस अध्ययन
12. सामाजिक-आर्थिक अध्ययन एवं शैक्षिक उपलब्धि
13. दबाव एवं उपलब्धि
14. प्रशासनिक नेतृत्व
15. आत्म-प्रतिमा
16. छात्रों का व्यावसायिक उद्देश्य

एक शोधकर्ता इन स्रोतों में शोध समस्याओं को ढूँढ़ सकता है।

यंग (1992) ने शोध समस्या की उत्पत्ति के निम्नांकित तीन स्रोतों को महत्वपूर्ण बतलाया है-

1. **प्रलेखी स्रोत-** इस स्रोत में पदीय एवं अपदीय सांख्यिकियों का निरीक्षण एवं विश्लेषण, स्थानीय समाचार-पत्रों तथा जनगणना प्रकाशनों, जहाँ से वर्णनात्मक सामग्रियाँ आसानी से उपलब्ध हो जाती है, को सम्मिलित किया जाता है।
2. **वैयक्तिक स्रोत-** इस स्रोत में उन पेशेवरों से बातचीत कर समस्या ढूँढने की कोशिश की जाती है जिन्हें वांछित आँकड़ों के बारे में सही-सही ज्ञान होता है।
3. **पुस्तकालय स्रोत-** इस स्रोत में विभिन्न तरह के पाठ्य पुस्तकों, जरनलों, मोनाग्राफ एवं समाचार विश्लेषण आदि को रखा जाता है। इन स्रोतों से सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों तरह के ज्ञान संग्रह किये जाते हैं जिनके आधार पर शोध समस्या के बारे में कुछ निर्णय लिये जाते हैं।

स्पष्ट हुआ कि शोध समस्या की उत्पत्ति के एक नहीं बल्कि कई स्रोत हैं जिनके माध्यम से शोधकर्ता एक वैज्ञानिक शोध समस्या का सृजन करता है।

जब कोई शोधकर्ता किसी क्षेत्र में किये गए शोधों की समीक्षा करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विभिन्न लोगों द्वारा किए गए शोधों के परिणाम में असंगतता है, तो वह स्पष्टतः इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कोई शोध समस्या मौजूद है। उदाहरणार्थ- यदि प्रतिक्रिया काल पर किए गए प्रयोगों से यह पता चले कि लड़के और लड़कियों के चयनात्मक प्रतिक्रिया काल में सार्थक अन्तर नहीं है, परन्तु इसी विषय पर हुए दूसरे अध्ययन में लिंग-भेद के कारण चयनात्मक प्रतिक्रिया काल में सार्थक अन्तर देखने को मिले, तो यहाँ परिणाम की असंगतता पुष्टि प्रयोग का रास्ता खोलता है। इसी प्रकार यदि किसी विषय या घटना से सम्बद्ध हमारा वर्तमान ज्ञान-भण्डार पर्याप्त नहीं होता है, तो भी शोध समस्या की उत्पत्ति होती है। उदाहरणार्थ, यदि यह तथ्य स्थापित हो कि व्यक्ति का चयनात्मक प्रतिक्रिया काल उसके साधारण प्रतिक्रिया काल से अधिक होता है, परन्तु यह नहीं मालूम हो कि लड़के और लड़कियों के चयनात्मक प्रतिक्रिया काल में सार्थक अन्तर होता है या नहीं, तो यहाँ यह समस्या उठ खड़ी होगी कि चयनात्मक प्रतिक्रिया काल पर लिंग-भेद के प्रभाव का अध्ययन किया जाय।

7.4.1 समाधान-योग्य बनाम असमाधान-योग्य समस्या -

परन्तु, शोध समस्या का चयन करते समय इस बात का ख्याल रखना आवश्यक है कि समस्या समाधान-योग्य है या नहीं। समाधान-योग्य समस्या से तात्पर्य उन समस्याओं से होता है जिनमें वैसे प्रश्न उठाये जाते हैं जिनका उत्तर दिया जाना व्यक्ति की सामान्य क्षमताओं के आधार पर संभव है। कला, विज्ञान, मानविकी से सम्बद्ध शोध समस्याएं प्रायः समाधान योग्य होती हैं, जहाँ तक मनोविज्ञान का प्रश्न है इसमें जो शोध समस्याएं होती है वे प्रायः इसी श्रेणी की होती हैं। शोध मनोवैज्ञानिकों ने समाधान-योग्य समस्या की एक खास विशेषता बतलाई है-शोध समस्या को समाधान-योग्य समस्या कहलाने के लिए उसे जाँच के योग्य होना चाहिए। किसी भी शोध समस्या को समाधान-योग्य कहलाने के लिए आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक उस समस्या में उठाये गये प्रश्न को आनुभविक ढंग से हाँ या नहीं के रूप में उत्तर दे सकें। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक समाधान-योग्य समस्या वह है जिसके लिए एक उचित एवं जाँचनीय उपकल्पना को एक अंतरिम समाधान के रूप में विकसित किया जा सके। मैकग्यूगन (1990) के शब्दों में, ''एक समस्या को समाधान-योग्य माना जा सकता है अगर इसके अंतरिम समाधान के रूप में एक उपकल्पना बनाया जाना संभव है।'' जैसे, क्या सीखने की प्रक्रिया जीव द्वारा की गयी अनुक्रिया के परिणाम पर निर्भर करती है? यह एक ऐसी शोध समस्या है जिसके लिए तैयार किये गये अंतरिम समाधान के रूप में कहा जा सकता है, ''यदि परिणाम पुरस्कारी होगा, तो जीव उस प्रक्रिया को करना सीख लेगा परन्तु यदि परिणाम दण्डात्मक होगा तो जीव उस प्रक्रिया को नहीं सीख पायेगा।''

एक उपयुक्त उपकल्पना में अन्य बातों के अलावा दो गुणों का होना भी अनिवार्य है। पहला, उसे शोध समस्या के लिए सुसंगत होना चाहिए अर्थात् उस विशेष उपकल्पना द्वारा, यदि शोध समस्या सचमुच में सही है, तो निश्चित रूप से समाधान होना संभव हो, तथा दूसरा उस विशेष उपकल्पना को जाँचनीय होना चाहिए, अर्थात् उस उपकल्पना को निश्चित रूप से सही या गलत ठहराया जाना संभव हो। उपर्युक्त उपकल्पना में ये दोनों गुण हैं अतः यह कहा जा सकता है कि संबंधित शोध समस्या समाधान-योग्य है।

दर्शनशास्त्र, धर्म आदि के क्षेत्र में कुछ-कुछ ऐसी अलौकिक घटनाओं या प्रश्नों का उत्तर ढूँढना होता है जिसका समाधान संभव ही नहीं है। ऐसी शोध समस्या को समाधान योग्य नहीं कहा जाता। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई शोधकर्ता कुछ प्रश्न जैसे संसार को किसने बनाया है? आदमी की मूल प्रकृति कैसी होती है? इस संसार का परम सत्य क्या है? का अध्ययन करना चाहता है तो यह समाधान नहीं होने योग्य का उदाहरण है। मनोविज्ञान का संबंध ऐसी शोध समस्याओं से नहीं होता है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान, जो एक विज्ञान है, में समाधान योग्य समस्याओं का अध्ययन किया जाता है परन्तु दर्शनशास्त्र तथा धर्म आदि में मूल रूप से समाधान नहीं होने योग्य समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि मनोविज्ञान की सभी शोध समस्याएँ समाधान योग्य ही हैं। सच्चाई यह है कि कुछ विशेष कारणों से मनोविज्ञान की कुछ समस्याएँ समाधान योग्य नहीं होती हैं, जिनके कई कारण है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ऐसे कारक निम्नांकित हैं-

1. **समस्या में असंरचना-** मनोविज्ञान तथा शिक्षा के शोध में कभी-कभी कोई समस्या इसलिए समाधान योग्य नहीं होती है क्योंकि उसमें असंरचना का अवशेष अधिक रह जाता है। यदि समस्या असंचरित है, तो वह निश्चित रूप से समाधान योग्य न होकर असमाधान योग्य हो जाती हैं जैसे, यदि कोई ये प्रश्न करता है-मानव मन कैसे कार्य करता है? तो यह एक समाधान नहीं होने योग्य समस्या का उदाहरण होगा क्योंकि उसमें प्रश्न का उद्देश्य ही बहुत कुछ अस्पष्ट या असंचरित है। हाँ, यदि इस समस्या को कुछ दूसरे ढंग से व्यक्त किया जाय ताकि उसमें असंरचना का गुण कम हो जाय तो वह समाधान योग्य बन जायेगा। जैसे, यदि उक्त प्रश्न की जगह पर यह कहा जाता है कि मानव के मन में कभी चंचलता क्यों बढ़ जाती है और कभी घट जाती है? तो यह एक समाधान योग्य समस्या होगी हालांकि इस समस्या का उत्तर देना भी तुलनात्मक रूप से बहुत आसान नहीं है।
2. **अपर्याप्त परिभाषित पद-** मनोविज्ञान तथा शिक्षा के शोध में कभी-कभी शोध समस्या के प्रश्न अपने अपर्याप्त परिभाषित पदों के कारण भी समाधान योग्य नहीं रह जाते हैं। इन समस्याओं में निहित पदों को चूँकि व्यावहारिक रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है, अतः वे एक समाधान नहीं होने योग्य समस्या बनी रह जाती हैं। जैसे, क्या बच्चे अनुकरण द्वारा भाषा सीखते हैं? इस शोध समस्या में अनुकरण एक ऐसा पद है जिसके वस्तुनिष्ठ अर्थ में मनोवैज्ञानिकों के बीच विभिन्नता है। अतः इस शोध समस्या को समाधान नहीं होने योग्य समस्या की श्रेणी में रखा जाएगा।
3. **सुसंगत आँकड़ों के संग्रहण में असंभवता-** मनोविज्ञान के शोध में कभी-कभी ऐसा होता है कि समस्या संरचित है तथा उसके पद भी व्यावहारिक रूप से परिभाषेय होते हैं, फिर भी शोधकर्ता यह निश्चित नहीं कर पाता है कि उससे संबंधित सुसंगत आँकड़ों का संग्रहण किस प्रकार किया जाय। इसका परिणाम यह होता है कि समस्या समाधान योग्य रह जाती है। एक उदाहरण लीजिए-मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता एक ऐसे नैदानिक रोगी जो न बोल सकता है, न देख सकता है, और न सुन सकता है, की बुद्धि पर मनोचिकित्सा का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन करना चाहता है। यह शोध समस्या संरचित है तथा उसके दोनों पद या चर 'बुद्धि तथा 'मनोचिकित्सा' ऐसे हैं जिन्हें व्यावहारिक रूप से परिभाषित भी किया जा सकता है। फिर भी इस शोध समस्या के बारे में आँकड़ों को संग्रहण करना संभव नह है। जैसे, क्या मनोचिकित्सा से रोगी की बुद्धि बढ़ जायेगी या घट जायेगी, इसके बारे में आँकड़े संग्रह करना संभव नहीं है, क्योंकि रोगी न सुन सकता है, न बोल सकता है, और न देख सकता है। अतः ऐसी समस्याएं समाधान योग्य नहीं होती है।

4.5 उपयुक्त समस्या चयन की कसौटियाँ

सामान्यतः एक उपयुक्त समस्या का चयन करना कठिन कार्य है तथा एक नये शोधकर्ता के लिए एक उचित समस्या का चयन करना और भी अधिक कठिन कार्य होता है। समस्या उपयुक्त हो इसके लिए समस्या के स्रोतों का ज्ञान तो आवश्यक है ही, इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कसौटियों पर उसे खरा उतरना भी आवश्यक होता है-

4.5.1. समस्या का समाधान योग्य होना-

कोई भी शोध समस्या तभी उपयुक्त कही जायेगी जब वह समाधान होने योग्य हो। यदि समस्या का चयन ऐसे विषय-क्षेत्र से है कि उसका समाधान नहीं हो सकता, किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता, तो उसे एक उपयुक्त समस्या की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

4.5.2. समस्या का परीक्षण योग्य होना-

शोध को समस्या समाधान की प्रक्रिया कहा गया है। यह प्रक्रिया दरअसल उपकल्पना परीक्षण की होती है जो किसी समस्या का प्रस्तावित समाधान होती है। अतः किसी समस्या को इस प्रकार का होना चाहिए कि उसके समाधान हेतु उपकल्पना का निर्माण कर उसका परीक्षण किया जा सके।

4.5.3. समस्या का समाधान आनुभविक प्रदन्त पर आधारित होना-

एक उपयुक्त समस्या का उत्तर आनुभविक प्रदत्त पर आधारित होना चाहिए। इसके लिए संगत प्रदत्तों का संकलन आवश्यक होता है साथ ही प्रदत्तों का स्वरूप पारिमाणात्मक होना भी आवश्यक होता है।

4.5.4. समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना-

चूँकि समस्या स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के बीच सम्बन्धों का उल्लेख करने वाला प्रश्नवाचक कथन होता है, अतः एक उपयुक्त समस्या चयन के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कौन-सा चर स्वतंत्र है। कौन-सा आश्रित। इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं होना चाहिए। यानी, चरों का स्वरूप स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए।

4.5.5. समस्या का नवीन होना-

यदि समस्या ऐसी है, जिस पर अनुसंधान पहले हो चुका है तो उस पर पुनः शोध करने से शोधकर्ता का समय, धन, श्रम की बर्बादी ही होगी और इसे उपयुक्त समस्या की संज्ञा भी नहीं दी जा सकेगी। अतः समस्या का स्वरूप नवीन एवं मौलिक होना भी एक उपयुक्त समस्या चयन की महत्वपूर्ण कसौटी है।

4.5.6 समस्या का सैद्धान्तिक मूल्य होना-

एक उपयुक्त समस्या ज्ञान-क्षेत्र की रिक्तता भरने योग्य होनी चाहिए। उसके समाधान से किसी सिद्धान्त के विकास में सहायता मिलनी चाहिए।

4.5.7. समस्या का सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व का होना-

किसी शोध समस्या को तभी उपयुक्त कहा जायेगा जब उसके अध्ययन की समाज में प्रतिष्ठा हो तथा समस्या के समाधान से न सिर्फ ज्ञान के वर्तमान क्षेत्र में वृद्धि हो बल्कि उसका सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व भी उच्च कोटि का हो।

उपर्युक्त कसौटियों के अतिरिक्त एक उपयुक्त समस्या का व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उपयोगी होना आवश्यक होता है। समय और खर्च के दृष्टिकोण से किफायती होना, शोधकर्ता का प्रशिक्षित होना आदि भी उपयुक्त समस्या की उपयोगी कसौटी है। इतना ही नहीं, समस्या प्रायः ऐसी होनी चाहिए जिससे किसी व्यक्ति या समुदाय के धार्मिक व नैतिक मूल्यों तथा मान्यताओं को आघात न पहुँचे।

4.6 सारांश

- दो या दो से अधिक चरों के बीच सम्बन्ध के बारे में जो प्रश्न पूछा जाता है उसे ही समस्या कहते हैं।
- समस्या की निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं- (क) इसकी अभिव्यक्ति प्रश्नवाचक वाक्य द्वारा होती है। (ख) अभिव्यक्ति दो या अधिक चरों के सम्बन्धों की होती है। (ग) आनुभविक विधियों से कथन की जाँच संभव होता है।
- किसी शोध समस्या के महत्वपूर्ण स्रोत हैं- पाठ्य-पुस्तक, शोध-जर्नल, इन्टरनेट पर उपलब्ध सूचनाएं, शोध प्रोफेसर एवं विषय-विशेषज्ञों की राय व मार्गदर्शन, शोधकर्ता का व्यक्तिगत अनुभव, शिक्षकों, छात्रों व अभिभावकों का अनुभव, पुस्तकालय व संस्था आदि।
- जिन प्रश्नों का उत्तर दिया जाना व्यक्ति की सामान्य क्षमताओं के वश में होता है उसे समाधान-योग्य समस्या कहते हैं तथा जब समस्या का स्वरूप ऐसा हो कि उसका समाधान, उसकी असंरचना, संदिग्धता, पदों को परिभाषित करने की अक्षमता, प्रदत्त संग्रहण की असंभवता आदि के कारण, संभव न हो तो उसे असमाधान योग्य समस्या कहते हैं।
- एक उपयुक्त समस्या चयन की निम्नलिखित कसौटियां होती हैं-
- (क) समस्या का समाधान योग्य होना, (ख) परीक्षण योग्य होना, (ग) समाधान आनुभविक प्रदत्त पर आधारित होना, (घ) समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना, (च) समस्या का नवीन होना, (छ) समस्या का सैद्धान्तिक मूल्य होना तथा (ज) समस्या का सामाजिक एवं शैक्षिक महत्व का होना।

4.7 शब्दावली

- **शोध समस्या:** समस्या दो या अधिक चरों के बीच सम्बन्ध की अभिव्यक्ति करने वाला प्रश्नवाचक कथन है।
- **असंरचित समस्या:** ऐसी समस्या जिसमें अस्पष्टता एवं संदिग्धता के कारण उसका समाधान संभव नहीं होता, असंरचित समस्या कहलाती है।

4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) ''समस्या वह प्रश्नवाचक वाक्य या कथन है, जो यह पूछता है कि दो या अधिक चरों के बीच कैसा सम्बन्ध है?'' समस्या की यह परिभाषा निम्नलिखित में से किसके द्वारा दी गई है-

1. यंग 2. करलिंगर 3. बेस्ट एवं फाह्न 4. इनमें से कोई नहीं

2) निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य-

(क) शोध समस्या को परीक्षण योग्य होना चाहिए।

(ख) एक उपयुक्त समस्या का समाधान योग्य होना आवश्यक नहीं है।

(ग) समस्या से सम्बन्धित चरों का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए।

उत्तर : 1) करलिंगर 2) क. सत्य ख. असत्य ग. सत्य

4.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शोध समस्या को परिभाषित करें एवं इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
2. एक उत्तम शोध समस्या के चयन की कौन-कौन सी कसौटियां हैं? विवेचन करें।
3. टिप्पणी लिखें-

(i) समस्या के स्रोत

(ii) समाधान योग्य समस्या बनाम असमाधान योग्य समस्या

इकाई - 5 शोध उपकल्पना: अर्थ एवं प्रकार
(Research Hypothesis: - Meaning and types)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 उपकल्पना का अर्थ

5.3.1 शोध समस्या एवं उपकल्पना में अन्तर

5.3.2 शोध उपकल्पना के कुछ उदाहरण

5.3.3 उपकल्पना निर्माण के उद्देश्य

5.4 शोध उपकल्पना के प्रकार

5.4.1 चरों की संख्या के आधार पर

5.4.1.1 साधारण उपकल्पना

5.4.1.2 जटिल उपकल्पना

5.4.2 चरों में विशेष सम्बन्ध के आधार पर

5.4.2.1 सार्वत्रिक उपकल्पना

5.4.2.2 अस्तित्वात्मक उपकल्पना

5.4.3 विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर

5.4.3.1 शोध उपकल्पना

5.4.3.2 नल उपकल्पना

5.4.3.3 सांख्यिकीय उपकल्पना

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने शोध समस्या के सम्बन्ध में जानकारी हासिल की और देखा कि समस्या दो या अधिक चरों के बीच के सम्बन्ध के बारे में एक प्रश्नवाचक कथन है।

प्रस्तुत इकाई में समस्या चयन के पश्चात समाधान की दिशा में हम दूसरा कदम रखेंगे जिसका नाम होगा उपकल्पना। यह समस्या का प्रस्तावित उत्तर होता है। इस इकाई में आप उपकल्पना का अर्थ एवं उसके विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

उपकल्पना का ज्ञान आपको किसी शोध की समस्या के समाधान की दिशा में चिन्तन का विविध आयाम प्रदान करेगा और आपको वैज्ञानिक तरीके से उपकल्पना का निर्माण करने में सहायता करेगा।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

- आप उपकल्पना को परिभाषित कर सकें एवं उसकी विशेषताएँ बता सकें।
- शोध समस्या तथा उपकल्पना में अन्तर स्पष्ट कर सकें।
- उपकल्पना निर्माण के उद्देश्य पर प्रकाश डाल सकें तथा
- विभिन्न प्रकार की उपकल्पनाओं को रेखांकित कर सकें।

5.3 उपकल्पना का अर्थ

जब शोधकर्ता किसी शोध समस्या का चयन कर लेता है तो वह उसका एक अस्थायी समाधान एक जांचनीय प्रस्ताव के रूप में करता है। इसी जांचनीय प्रस्ताव को तकनीकी भाषा में उपकल्पना कहा जाता है। यानी, किसी शोध समस्या का एक प्रस्तावित जांचनीय उत्तर ही उपकल्पना कहलाता है। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है - मान लिया जाय कि एक शोधकर्ता की शोध समस्या यह है - क्या सीखना या पुनर्बलन का प्रभाव पड़ता है? थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि इस शोध समस्या का एक प्रस्तावित जांचनीय उत्तर इस प्रकार तैयार किया जाता है - ''पुरस्कार से सीखने की क्रिया तेजी से होगी तथा दण्ड देने से सीखने की क्रिया मन्द पड़ जायेगी।'' यह जांचनीय उत्तर उपकल्पना कहलायेगा। अगर प्रयोग या शोध के निष्कर्ष से उपकल्पना की पुष्टि हो जाती है, तो उपकल्पना को सही मान लिया जाता है। परन्तु यदि पुष्टि नहीं हो पाती है, तो उपकल्पना में या तो परिमार्जन कर दिया जाता है या उसकी जगह पर कोई दूसरी उपकल्पना विकसित कर ली जाती है।

उपकल्पना को कुछ प्रमुख शोध विशेषज्ञों ने इस प्रकार परिभाषित किया है - एडवर्ड्स (1974) के अनुसार - ''उपकल्पना दो या अधिक चरों के संभावित सम्बन्ध के विषय में कथन है। यह एक प्रश्न का ऐसा अनुमानित उत्तर है, जिससे चरों के सम्बन्ध का पता चलता है।

मैकग्यूगन (1990) के अनुसार ''दो या दो से अधिक चरों के बीच संभावित संबंधों के बारे में बनाये गये जांचनीय कथन को उपकल्पना कहा जाता है।''

करलिंगर (1986) के अनुसार, ''दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों के अनुमानित कथन को उपकल्पना कहा जाता है। उपकल्पनाओं को हमेशा घोषणात्मक वाक्य के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और वे चरों से चरों के बीच में सामान्य या विशिष्ट संबंध बतलाते हैं।''

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जिनसे उपकल्पना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। कुछ ऐसे तथ्य निम्नांकित हैं -

- उपकल्पना में दो या दो से अधिक चरों के बीच एक संबंध बतलाया जाता है। जैसे, ''पुरस्कार देने से सीखने की प्रक्रिया तेजी से होती है'', एक ऐसी ही उपकल्पना का उदाहरण है जिसमें पुरस्कार (एक चर) तथा सीखना (दूसरा चर) के बीच एक तरह का सम्बन्ध बतलाया जा रहा है।
- उपकल्पना चरों के बीच एक जांचनीय कथन के रूप में अभिव्यक्त की जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि उपकल्पना में दो या दो से अधिक ऐसे चर होते हैं जिन्हें मापा जाना संभव है। जैसे, ऊपर के उदाहरण में पुरस्कार तथा सीखना दोनों ही ऐसे चर हैं जिनका आसानी से मापन किया जा सकता है।
- उपकल्पना द्वारा चरों के बीच एक सामान्य या विशिष्ट संबंधों की अभिव्यक्ति की जाती है।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपकल्पना एक सम्बन्धित समस्या का ऐसा संभावित एवं परीक्षण योग्य प्रस्ताव होता है जिसके आधार पर सम्बन्धित चरों अथवा घटनाओं का अध्ययन आनुभविक रूप से किया जा सके और समस्या का पर्याप्त, उपयुक्त तथा वैध उत्तर उपलब्ध हो सके।

5.3.1 शोध समस्या तथा उपकल्पना में अन्तर -

शोध समस्या दो या दो से अधिक चरों के बीच एक प्रश्नात्मक वाक्य या कथन होता है। उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच व्यक्त प्रश्नात्मक कथन का एक अस्थायी समाधान होता है। स्पष्ट है कि दोनों में बहुत हद तक समानता है। जैसे दोनों के द्वारा दो या दो से अधिक चरों के बीच एक खास तरह के संबंध की अभिव्यक्ति होती है। दूसरी समानता यह बतलायी गयी है कि इन दोनों के द्वारा शोध का दिशा निर्देश मिलता है। परन्तु इन समानताओं के बावजूद भी इन दोनों में निम्नांकित अन्तर है -

i) उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच सीधे एक जांचनीय कथन होता है जबकि शोध समस्या अपने आप में जांचनीय कथन नहीं होता है लेकिन इसका अनुप्रयोग आनुभविक विधियों द्वारा अवश्य जांचनीय होता है। उदाहरणस्वरूप, क्या पुनर्बलन का प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है? यह एक शोध समस्या का उदाहरण है जिसकी जांच संभव नहीं है। परन्तु जब इस शोध समस्या के समाधान के लिए एक अस्थायी तौर

पर हम एक प्रस्ताव तैयार कर लेते हैं, तो यह उपकल्पना का रूप ले लेता है जिसकी जांच सम्भव है। जैसे, ''पुरस्कार देने से सीखने की प्रक्रिया तेजी से होगी'' एक उपकल्पना है, जिसकी जांच शोधकर्ता प्रयोग करके करता है।

ii) शोध समस्या की अभिव्यक्ति एक प्रश्नात्मक कथन के रूप में की जाती है जबकि उपकल्पना की अभिव्यक्ति एक घोषणात्मक वाक्य या कथन के रूप में की जाती है। जैसे, क्या पुनर्बलन का प्रभाव सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है? एक प्रश्नात्मक कथन है जो शोध समस्या का एक उदाहरण है। परन्तु ''पुरस्कार से सीखने की प्रक्रिया तेजी से होगी'' या ''दण्ड देने से सीखने की प्रक्रिया धीमी गति से होगी'' एक घोषणात्मक कथन है जो उपकल्पना का एक उदाहरण है।

iii) शोध समस्या द्वारा यह पता चलता है कि चरों के बीच के संबंधों की मुख्य समस्या क्या है। इससे उसके समाधान की ओर कोई संकेत नहीं मिलता है। परन्तु उपकल्पना द्वारा चरों के बीच के संबंधों की समस्या के संभावित हल का संकेत मिलता है।

स्पष्ट है कि शोध समस्या तथा उपकल्पना में समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएं हैं।

5.3.2 शोध उपकल्पना के कुछ उदाहरण -

i) लड़के और लड़कियों के समस्या समाधान व्यवहार में सार्थक अन्तर होता है।
ii) शिक्षकों के कार्य संतोष पर उनकी वैवाहिक स्थिति का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
iii) समूह अध्ययन से छात्रों की उपलब्धि का स्तर बढ़ जाता है।
iv) छात्रावास में रहने वाले लड़के छात्रावास में नहीं रहने वाले लड़कों से ज्यादा अल्कोहल लेते हैं।
v) कार्य के घंटे बढ़ जाने से कार्य तुष्टि में कमी आ जाती है।
vi) विखण्डित परिवार के बच्चो में अपराध भावना अधिक पायी जाती है।
vii) वर्ग की तुलना में निम्न वर्ग के लोग ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं।
viii) अलगाव बोध छात्र-उपद्रव को बढ़ावा देता है।
ix) जन्म-क्रम व्यक्ति की निर्भरता-उन्मुखता का एक सार्थक निर्धारक होता है।
x) परिवार के सबसे छोटे बच्चे में निर्भरता उन्मुखता सर्वाधिक पायी जाती है।

5.3.3 उपकल्पना निर्माण के उद्देश्य -

उपकल्पना का वैज्ञानिक तथ्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जब कोई शोधकर्ता किसी एक समस्या का अनुभव करता है तो उसे उसके समाधान के लिए एक उपकल्पना की आवश्यकता होती है। पूर्व-स्थापित तथ्यों में शोधकर्ता को प्रायः एक समस्या से सम्बन्धित एक उपयुक्त उपकल्पना की रचना में सहायता मिलती है, जिसके परीक्षण से नये वैज्ञानिक तथ्य उपलब्ध होते हैं।

जिस प्रकार वैज्ञानिक नियमों एवं तथ्यों से उपकल्पना की रचना में सहायता मिलती है, उसी प्रकार पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों से भी शोधकर्ता को एक उपकल्पना की रचना में पर्याप्त सहायता मिलती है। उपकल्पना के परीक्षण से जो नये तथ्य प्राप्त होते हैं, उनसे एक नवीन सिद्धान्त की रचना संभव होती है और यदि नवीन तथ्य पूर्व-स्थापित सिद्धान्त से भिन्न होते हैं, तो पूर्व-स्थापित सिद्धान्त में संशोधन की आवश्यकता भी पड़ सकती है।

समाज मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि एक अच्छी उपकल्पना तीन महत्वपूर्ण कार्य करती है-पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों की जांच, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा किसी घटना का वर्णन। इसके अतिरिक्त, उपकल्पनाओं की जांच कर शैक्षणिक विधियों में सुधार किया जा सकता है, विभिन्न तरह की सामाजिक समस्याओं के समाधान के नये तरीकों को ढूंढा जा सकता है, अपराधियों के व्यवहारों में सुधार लाया जा सकता है तथा एक नयी सामाजिक नीति की घोषणा जा सकती है।

5.4 शोध उपकल्पना के प्रकार

मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा के क्षेत्र में शोधकर्ताओं द्वारा बनाये गये उपकल्पनाओं के स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उसे कई प्रकारों में बांटा जा सकता है। शोध विशेषज्ञों ने उपकल्पना का वर्गीकरण निम्नांकित तीन आधारों पर किया है -

5.4.1 चरों की संख्या के आधार पर -

मनोवैज्ञानिकों ने प्राक्कल्पना का सबसे सरल वर्गीकरण उपकल्पना में निहित चरों के आधार पर किया है। इस कसौटी पर उपकल्पना के मुख्य दो प्रकार बतलाये गये हैं –

5.4.1.1 साधारण उपकल्पना -

साधारण उपकल्पना वैसी उपकल्पना को कहा जाता है जिसमें चरों की संख्या मात्र दो होती है और सिर्फ इन्हीं दो चरों के संबंध द्वारा शोध समस्या का एक प्रस्तावित उत्तर दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप, ''बच्चों की बुद्धि तथा वर्ग उपलब्धि में धनात्मक सहसंबंध होता है।'' इस उपकल्पना में दो चर हैं-बुद्धि तथा वर्ग उपलब्धि, जिनके बीच एक खास संबंध की चर्चा की गई है। अतः यह एक साधारण उपकल्पना का उदाहरण है।

5.4.1.2 जटिल उपकल्पना -

जटिल उपकल्पना वैसी उपकल्पना को कहा जाता है जिसमें चरों की संख्या दो से अधिक होती है और उनमें एक खास सम्बन्ध बतलाकर शोध समस्या का प्रस्तावित उत्तर तैयार किया जाता है। जैसे - शहर के उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों में धूम्रपान करने की प्रवृत्ति देहात के मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों की अपेक्षा अधिक होती है। इस उपकल्पना में तीन चर हैं - सामाजिक-आर्थिक स्तर, धूम्रपान की प्रवत्ति तथा शहरी-ग्रामीण क्षेत्र। इन तीनों चरों में विशेष प्रकार का सम्बन्ध बतलाकर जिस उपकल्पना का उल्लेख किया गया है, वह निश्चित रूप से जटिल उपकल्पना का उदाहरण है।

5.4.2 चरों में विशेष संबंध के आधार पर -

कुछ शोध विशेषज्ञों ने उपकल्पना का वर्गीकरण चरों के विशिष्ट सम्बन्धों के आधार पर किया है। जैसे, मैकग्यूगन (1990) ने इस कसौटी के आधार पर उपकल्पना के मुख्य दो प्रकार बतलाये हैं, जो निम्नांकित हैं -

5.4.2.1 सार्वत्रिक उपकल्पना -

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस तरह के उपकल्पना का स्वरूप ही कुछ ऐसा होता है जो निहित चरों के सभी तरह के मानों के बीच के सम्बन्ध को हर परिस्थिति में हर समय बनाये रखता है। जैसे मानव की सीखने की प्रक्रिया पुरस्कार तथा प्रशंसा द्वारा तेजी से होती है, एक ऐसी उपकल्पना का उदाहरण है जिसमें बतलाया गया सम्बन्ध हर परिस्थिति में हर समय प्रत्येक मानव पर लागू होता है। परन्तु मनोविज्ञान में चूंकि जीव के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और चूंकि व्यवहारों में विभिन्नता होने की संभावना अधिक होती है, इसलिए इस तरह की सार्वत्रिक उपकल्पना की सीमा बंधी हुई होती है। जैसे, उपर्युक्त उपकल्पना को ही ले लिया जाय। यह उपकल्पना सामान्य मानव के लिए तो ठीक है परन्तु असामान्य मानव के लिए कहां तक उतना ही उपयुक्त होगा, कहना मुश्किल होगा। अतः व्यवहारों में विभिन्नता के कारण सार्वत्रिक उपकल्पना अपने आप ही एक सीमा में बंध जाती है।

5.4.2.2 अस्त्विात्मक उपकल्पना -

वैसी उपकल्पना को कहा जाता है जो सभी व्यक्तियों या परिस्थितियों के लिए नहीं तो कम-से-कम एक व्यक्ति या परिस्थिति के लिए निश्चित रूप से सही होती है। जैसे, यदि एक उपकल्पना विकसित की जाती है कि वर्ग में कम-से-कम एक छात्र तो ऐसा है जिसमें सीखने की प्रक्रिया दण्ड देने से तेजी से होती है। तो यह एक अस्तिवात्मक उपकल्पना का उदाहरण होगा। इस ढंग की उपकल्पना के साथ एक दोष यह बतलाया गया है कि यदि वह जांच के बाद सही पाई जाती है तो उसका सामान्यीकरण अन्य व्यक्तियों के लिए नहीं किया जा सकता है और इस तरह से आगे की समस्या शोधकर्ता के लिए बनी ही रह जाती है। ऐसी परिस्थति में शोधकर्ता एक नहीं बल्कि कई अस्तित्वात्मक उपकल्पनाओं की जांच करता है और तब कहीं जाकर वह सामान्यीकरण करने की अवस्था में पहुंच पाता है।

5.4.3 विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर -

शोध के विशिष्ट उद्दश्य के आधार पर शोध मनोवैज्ञानिकों ने उपकल्पना को निम्नांकित तीन भागों में बांटा है ।

5.4.3.1 शोध उपकल्पना या कार्यरूप उपकल्पना -

शोध उपकल्पना से तात्पर्य वैसी उपकल्पना से होता है जो किसी घटना या तथ्य के लिए बनाये गये विशिष्ट सिद्धान्त से निकाली गई अनुमति पर आधारित होती है। शोधकर्ता इस विश्वास के साथ इस तरह की उपकल्पना का प्रतिपादन करता है कि वह यथार्थ है क्योंकि वह एक सिद्धान्त पर आधारित होता है। शोधकर्ता की तमन्ना यही रहती है कि शोध के परिणाम द्वारा उसकी शोध उपकल्पना की संपुष्टि हो जाय, हालांकि कभी-कभी उसकी यह तमन्ना पूरी नहीं हो पाती है। शोध उपकल्पना को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है - सीखने का एक प्रमुख सिद्धान्त सूझ सिद्धान्त है। यदि इस पर आधारित करके कोई शोधकर्ता यह उपकल्पना बनाता है कि व्यक्ति सूझ द्वारा प्रयत्न तथा भूल की अपेक्षा जल्दी सीखता है तो यह एक शोध उपकल्पना का उदाहरण होगा। शोध उपकल्पना की संक्रियात्मक अभिव्यक्ति को ही वैकल्पिक उपकल्पना कहते हैं।

शोध उपकल्पना की अभिव्यक्ति दो ढंग से की जा सकती है - दिशात्मक अभिव्यक्ति तथा अदिशात्मक अभिव्यक्ति। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता व्यक्तियों के दो समूहों में बुद्धि में अन्तर का अध्ययन करना चाहता है जिसके लिए वह शोध उपकल्पना इस तरह बनाता है - समूह 'अ' समूह 'ब' से बुद्धि में श्रेष्ठ है। इस शोध उपकल्पना के लिए वह वैकल्पिक उपकल्पना दो तरह से तैयार कर सकता है समूह 'अ' तथा

समूह 'ब' की बुद्धि एक समान हैं या समूह 'ब' बुद्धि में समूह 'अ' से श्रेष्ठ है या समूह 'अ' बुद्धि में समूह 'ब' से श्रेष्ठ है। पहली उपकल्पना अदिशात्मक ढंग से अभिव्यक्त की गई है क्योंकि इसमें समूह 'अ' तथा समूह 'ब' में अन्तर की कोई दिशा का उल्लेख नहीं है। परन्तु दूसरी उपकल्पना दिशात्मक ढंग से अभिव्यक्त की गई है क्योंकि इसमें समूह 'अ' तथा 'ब' के अन्तर में एक दिशा पर बल डाला गया है।

स्पष्ट है कि शोध उपकल्पना दिशात्मक और अदिशात्मक दोनों तरह की हो सकती है। यह शोधकर्ता के तर्क एवं पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित होता है।

5.4.3.2 नल उपकल्पना -

नल उपकल्पना शोध उपकल्पना के ठीक विपरीत होती है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हे, यह एक तरह से उल्लेखित चरों के बीच 'प्रभाव-नहीं' की उपकल्पना होती है। दूसरे शब्दों में नल उपकल्पना वह उपकल्पना है जिसके द्वारा हम चरों के बीच कोई अन्तर नहीं होने के सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं। इसे शून्य उपकल्पना भी कहते हैं। शोधकर्ता जब कोई शोध उपकल्पना बनाता है तो साथ-ही-साथ ठीक उसके विपरीत ढंग से नल उपकल्पना भी बना लेता है और उसकी तमन्ना यही रहती है कि शोध परिणाम के द्वारा नल उपकल्पना अस्वीकृत हो जाय ताकि वह विश्वास के साथ शोध उपकल्पना को स्वीकृत करके उस दिशा में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच सके। जैसे, उपर्युक्त शोध उपकल्पना के लिए नल उपकल्पना इस प्रकार होगी, 'व्यक्ति सूझ द्वारा प्रयत्न तथा भूल की अपेक्षा जल्दी नहीं सीखता है।' यदि शोध के परिणाम द्वारा यह अस्वीकृत हो जाता है तो स्वतः उसका विपरीत (यानी, शोध उपकल्पना) को यथार्थ मान लिया जाता है। यही कारण है कि नल उपकल्पना को एक काल्पनिक मॉडल माना गया है क्योंकि उसका अस्तित्व वास्तविक रूप से तो होता नहीं है।

5.4.3.3 सांख्यिकीय उपकल्पना -

सांख्यिकीय उपकल्पना से तात्पर्य वैसी उपकल्पना से होता है जिसमें सांख्यिकीय जीवसख्या के बारे में विशेष सम्बन्ध की उत्पत्ति होती है तथा जिसे शोधकर्ता अपने प्राप्त आंकड़ों के आधार पर स्वीकृत या अस्वीकृत करना चाहता ह। ब्लैक तथा चैम्पियन (1976) के शब्दों में 'सांख्यिकीय उपकल्पना सांख्यिकीय जीवसंख्या के बारे में वैसा कथन होता है जिसे प्रेक्षित आंकड़ों से मिलने वाली सूचनाओं के आधार पर समर्थन दिया जाता है या खण्डन किया जाता है।' सांख्यिकीय उपकल्पना का अर्थ समझने के लिए यह आवश्यक है कि सांख्यिकीय जीवसंख्या का तात्पर्य समझा जाए। सांख्यिकीय जीव संख्या एक ऐसी जीवसंख्या है जो व्यक्तियों की भी हो सकती है या कुछ चीजों की भी हो सकती है। सांख्यिकीय जीवसंख्या की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तियों या चीजों के बारे में किये गये प्रेक्षणों को कुछ संख्यात्मक मात्राओं में बल दिया जाता है और तब उसके बारे में कोई निर्णय लिया जाता है। अब एक उदाहरण लें। मान लिया जाय कि शोधकर्ता समूह 'अ' तथा समूह 'ब' में उम्र अन्तरों का अध्ययन करना चाहता है। इसके लिए वह शोध उपकल्पना इस प्रकार विकसित कर सकता है, ''समूह अब समूह 'ब' से प्रौढ़ है।'' इस शोध उपकल्पना को सांख्यिकीय उपकल्पना में बदलने के लिए पहले शोधकर्ता को समूह 'अ' के सभी व्यक्तियों के उम्र का माध्य ज्ञात करना होगा तथा उसी ढंग से समूह 'ब' के सभी व्यक्तियों की उम्र का माध्य ज्ञात करना होगा। इसके बाद इन दोनों माध्यों की तुलना कर इस तथ्य पर पहुंचा जायेगा कि दोनों माध्यों में से कौन बड़ा है और किस समूह को प्रौढ़ माना जायेगा। इस तरह से स्पष्ट है कि सांख्यिकीय उपकल्पना शोध उपकल्पना का ही सांख्यिकीय पदों में एक परिवर्तित रूप को कहा जाता है। सांख्यिकीय उपकल्पना में सिर्फ शोध उपकल्पना

को ही नहीं बल्कि नल उपकल्पना को भी सांख्यिकीय पदों में बदल दिया जाता है। जब शोध उपकल्पना तथा नल उपकल्पना को सांख्यिकीय उपकल्पना के रूप में व्यक्त किया जाता है, तो विशेष संकेत का प्रयोग किया जाता है। शोध उपकल्पना के लिए H_1 तथा नल उपकल्पना के लिए H_0 का संकेत प्रयोग किया जाता है तथा माध्य के लिए

μ □□प्रयोग किया जाता है।

यदि शोध उपकल्पना यह है कि ''समूह 'अ' समूह 'ब' से प्रौढ़ है'' तो इसकी सांख्यिकीय उपकल्पना के रूप में H_0 तथा H_1 की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से की जाती है -

$$H_0 : \mu_1 \leq \mu_2$$

$$H_1 : \mu_1 > \mu_2$$

स्पष्ट हुआ कि H_1 है ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र से अधिक है'' तथा H_0 तथा ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र के बराबर है या कम है''।

परन्तु यदि शोध उपकल्पना यह है कि समूह 'अ' तथा समह 'ब' के उम्र में अन्तर है तो इसे सांख्यिकीय उपकल्पना के रूप में बदलने पर H_0 तथा H_1 की अभिव्यक्ति अलग हो जायेगी। ऐसी परिस्थिति में H_0 तथा H_1 निम्न प्रकार से होगी-

$$H_0 : \mu_1 = \mu_2$$

$$H_1 : \mu_1 \neq \mu_2$$

स्पष्ट है कि H_1 है ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र के बराबर नहीं है'' तथा H_0 है ''समूह 'अ' का माध्य उम्र समूह 'ब' के माध्य उम्र के बराबर है।''

इस तरह से हम देखते हैं कि शोध विशेषज्ञों ने शोध उपकल्पना का वर्गीकरण कई ढंगों से करके उसके स्वरूप की व्याख्या करने की कोशिश की है।

5.5 सारांश

- किसी शोध समस्या का एक प्रस्तावित जाँचने योग्य उत्तर ही उपकल्पना कहलाती है। यह किसी समस्या का एक अस्थायी समाधान है।
- उपकल्पना में चरों के बीच एक सामान्य या विशिष्ट सम्बन्धों की अभिव्यक्ति की जाती है।
- एक अच्छी उपकल्पना तीन महत्वपूर्ण कार्य करती है-पूर्व स्थापित सिद्धान्तों की जाँच, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा किसी घटना का वर्णन ।
- शोध विशेषज्ञों ने उपकल्पना का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया है-चरों की संख्या के आधार पर, चरों में विशेष सम्बन्ध के आधार पर तथा विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर। चरों की संख्या के आधार पर उपकल्पना के

दो प्रकार हैं- साधारण तथा जटिल; चरों में विशेष संबंध के आधार पर उपकल्पना को सार्वत्रिक एवं अस्तित्वात्मक नामक दो वर्गों में विभाजित किया गया है तथा विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर उपकल्पना के तीन प्रकार बताये गए हैं- शोध उपकल्पना, नल उपकल्पना तथा सांख्यिकीय उपकल्पना।

5.6 शब्दावली

- **उपकल्पना:** दो या दो से अधिक चरों के बीच संभावित संबन्धों के बारे में बनाये गए जाँचनीय कथन को उपकल्पना कहते हैं।
- **शोध उपकल्पना:** वैसी उपकल्पना जो किसी घटना या तथ्य के लिए बनाये गए विशिष्ट सिद्धान्त से निकाली गई अनुमिति पर आधारित होती है।
- **वैकल्पिक उपकल्पना:** शोध उपकल्पना की संक्रियात्मक अभिव्यक्ति को वैकल्पिक उपकल्पना कहते हैं।
- **नल उपकल्पना:** वह उपकल्पना जिसके द्वारा हम चरों के बीच कोई अन्तर नहीं होने के सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं।

5.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. उपकल्पना किसी समस्या का एक ..... उत्तर है। (वास्तविक/प्रस्तावित)
2. जिस उपकल्पना के चरों की संख्या मात्र दो होती है उसे कहते हैं .....उपकल्पना। (साधारण/जटिल)
3. ''लड़कियों में निर्भरता उन्मुखता लड़कों की तुलना में ज्यादा पाई जाती है।'' यह है एक ..... उपकल्पना है। (क्रियात्मक/दिशात्मक)

उत्तर: 1. प्रस्तावित 2. साधारण 3. दिशात्मक

5.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपकल्पना को परिभाषित करें एवं इसकी विशेषताओं का उल्लेख करें।

2. शोध समस्या एवं शोध उपकल्पना में क्या अन्तर है? उपकल्पना के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करें।
3. उपकल्पना से आप क्या समझते हैं? उपकल्पना निर्माण का उद्देश्य बतायें।
4. उपकल्पना के विभिन्न प्रकारों का उदाहरण के साथ विवेचन करें।
5. टिप्पणी लिखें-
    i. सांख्यिकीय उपकल्पना
    ii. शून्य उपकल्पना
    iii. अस्तित्वात्मक उपकल्पना

इकाई - 6 उपकल्पना के स्त्रोत एवं एक अच्छी उपकल्पना की विशेषताएँ
(Sources of hypothesis, Characteristics of a Good Research Hypothesis)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 शोध समस्या की परिभाषा

6.3.1 समाज का सांस्कृतिक मूल्य

6.3.2 पूर्व में किए गए शोध

6.3.3 शोध-पुस्तकें, पत्रिकाएं, जर्नल, शोध-सार आदि

6.3.4 व्यक्तिगत अनुभव

6.3.5 विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन

6.3.6 सूझ या अचानक मिली प्रेरणा

6.3.7 अध्ययन में अनुरूपता

6.4 एक उत्तम उपकल्पना की विशेषताएँ

6.5 सारांश

6.6 शब्दावली

6.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने उपकल्पना का अर्थ, उसकी विशेषता एवं उसके विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया। शोध समस्या एवं शोध उपकल्पना में अन्तर स्पष्ट करना एवं विभिन्न प्रकार की उपकल्पनाओं का निर्माण करना आप जान चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों का अध्ययन कर पायेंगे, साथ-ही यह भी जान पायेंगे कि एक उत्तम उपकल्पना की कौन-कौन सी विशेषताएँ होती हैं।

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह फायदा होगा कि आप किसी शोध समस्या के समाधान हेतु एक उत्तम उपकल्पना का निर्माण करने की दिशा में उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों की जांच-पड़ताल करने के लायक हो जायेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप -

- उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों को वर्गीकृत कर सकें।
- समस्या के परिप्रेक्ष्य में उपकल्पना निर्माण हेतु सही स्रोत की तलाश कर सकें।
- उत्तम शोध उपकल्पना का निर्माण करने में सक्षम हो सकें तथा
- एक उत्तम शोध उपकल्पना की विशेषताओं को रेखांकित कर सकें।

6.3 उपकल्पना के स्रोत

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई विभिन्न परिभाषाओं एवं उसके विश्लेषण से यह तो स्पष्ट है कि उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच. संभावित सबंधों के बारे में बनाया गया जांचनीय कथन है। इसका निर्माण प्रयोगात्मक या अप्रयोगात्मक किसी भी प्रकार के शोध में समस्या के प्रस्तावित उत्तर के रूप में किया जाता है। यह साधारण, जटिल, साव्रत्रिक, अस्तत्वात्मक, वैकल्पिक, निराकरणीय या सांख्यिकीय रूप की हो सकती है। रूप इसका जो भी हो, परन्तु उपकल्पना का उद्देश्य सिद्धान्तों की जांच करना, नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना, चरों के सांख्यिकीय विश्लेषण को बढ़ावा देना, शोध को सही दिशा देना, किसी घटना का वर्णन करना आदि होता है। अब सवाल यह उठता है कि किसी समस्या समाधान हेतु जो उपकल्पना निर्मित की जाती है उसका स्रोत क्या है? यानी, उपकल्पना निर्माण में सहायक तत्व या एजेंन्सी कौन-कौन से हैं, जो एक शोधकर्ता को विभिन्न प्रकार की उपकल्पनाओं का निर्माण करने हेतु सूझ या अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में विद्वानों, शोधकर्ताओं, विशेषज्ञों आदि ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण स्रोतों की चर्चा की है जो किसी उपकल्पना के निर्माण में सहायक होते हैं-

(i) समाज का सांस्कृतिक मूल्य
(ii) पूर्व में किये गये शोध
(iii) शोध-पुस्तकें, पत्रिकाऐं, जर्नल शोधसार आदि
(iv) व्यक्तिगत अनुभव
(v) विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन
(vi) सूझ या अचानक मिली प्रेरणा
(vii) अध्ययन में अनुरूपता

6.3.1 समाज का सांस्कृतिक मूल्य -

हर समाज का अपना-अपना सांस्कृतिक मूल्य होता है। अमरीकी संस्कृति में जहाँ वैयक्तिकता, गतिशीलता, प्रतिस्पर्धा एवं समानता पर बल दिया जाता है, वहीं भारतीय संस्कृति में परम्परा, सामूहिकता, कर्म एवं असंलग्नता पर बल दिया जाता है। अतः यदि कोई शोधकर्ता अमरीकी संस्कृति का अध्ययन करना चाहता है तो उसे वहां के मूल्यों के सापेक्ष उपकल्पना का निर्माण करना होगा और यदि भारतीय संस्कृति का अध्ययन करना चाहता है तो यहाँ के सांस्कृतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में उपकल्पवना का निर्माण करना होगा। भारतीय संस्कृति के अध्ययन से सम्बद्ध उपकल्पना हो सकती है कि ''भारत में मतदान व्यवहार का सम्बन्ध मतदाताओं की जाति से है।

6.3.2 पूर्व में किए गए शोध -

उपकल्पना के निर्माण में पूर्व में किए गए शोधों से प्रेरणा मिलती है। पूर्व के शोधों के परिणामों के गहन अध्ययन से कभी-कभी उनमें परिकल्पना सम्बन्धी, विश्लेषण सम्बन्धी, अनुमान सम्बन्धी तथा सामान्यीकरण से सम्बद्ध कुछ ऐसी कमियां मिलती हैं कि उनके आधार पर नवीन उपकल्पना की रचना कर उसकी जांच की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, यदि एक शोधकर्ता छात्र-उपद्रव का अध्ययन कर रहा है और पूर्व के शोधों में एक रिक्तता मिलती है, तो वह यह उपकल्पना बना सकता है कि ''महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में दो या तीन वर्ष से अधिक अवधि से अध्ययनरत छात्र प्रथम वर्ष के छात्रों की तुलना में छात्र-समस्या के प्रति ज्यादा अभिरूचि प्रदर्शित करते हैं।'' इसके अतिरिक्त, वह इस प्रकार की उपकल्पना भी निर्मित कर सकता है। कि ''ऊँची योग्यता एवं ऊँची सामाजिक प्रतिष्ठता वाले छात्र निम्न योग्यता एवं सामाजिक प्रतिष्ठा वाले छात्रों की तुलना में छात्र उपद्रव या विरोध में कम सहभागिता करते हैं।''

6.3.3 शोध पुस्तकें, पत्रिकाएं, जर्नल, शोध-सार आदि -

आजकल ज्ञान के हर क्षेत्र में शोध से सम्बन्धित साहित्य बिखरे पड़े हैं। शोध जर्नल हैं, शोध के विषय में सम्बद्ध पीरिऑडिकल्स हैं, आवस्ट्रैक्ट हैं, इन्टरनेट पर साहित्य उपलब्ध हैं। समस्या से सम्बन्धित सहित्य का अध्ययन करने से शोधकता को नवीन सम्बन्धों एवं तथ्यों की व्यापक जानकारी उपलब्ध होती है और इससे उपकल्पना के निर्माण में सुविधा होती है। मनोविज्ञान में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ द्वारा ''अमेरिकन साइकोलॉजिकल आबस्ट्रैक्ट'' का प्रकाशन होता है। इंडिया में ''इंडियन साइकोलॉजिकल आबस्ट्रैक्ट'' प्रकाशित होता है। देश-विदेश में अलग-अलग ''साइकोलॉजिक आबस्ट्रैक्ट'' एवं विषय से सम्बद्ध जर्नल प्रकाशित होते हैं। इन आबस्ट्रैक्ट एवं जर्नल के अध्ययन से शोधकर्ता को उपकल्पना निर्मित करने में सहायता मिलती है।

6.3.4 व्यक्तिगत अनुभव -

शोधकर्ता प्रायः सामान्य घटनाओं को एक नवीन दृष्टिकोण से देखता है। उसके निरीक्षण में प्रायः एक नवीन रचनात्मक शक्ति, तर्क शक्ति व अन्तर्दृष्टि रहती है। न्यूटन द्वारा फल को गिरते देखकर उत्पन्न सूझ, डार्विन का जीवों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों की सूझ आदि शोधकर्ता के व्यक्तिगत अनुभव से सम्बद्ध थे और इस अनुभव के नवीन उपकल्पनाओं को जन्म दिया, नवीन सिद्धान्तों की स्थापना में सहायक हुआ।

6.3.5 विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन -

कभी-कभी शोधकर्ता को उपकल्पना निर्माण में विषय विशेषज्ञों से भी सहायता लेनी पड़ती है। किसी विषय के जो अधिकृत व्यक्ति होते हैं या विश्वविद्यालयों के जो प्रोफेसर होते हैं उनसे वार्तालाप करके तथा समस्या पर विवेचन करके शोधकर्ता उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। विषय-विशेषज्ञ से मार्दर्शन प्राप्त कर लेने पर समस्या समाधान की दिशा में अग्रसर होने एवं एक उपयुक्त उपकल्पना के निर्माण में शोधकर्ता को सहुलियत होती है।

6.3.6 सूझ या अचानक मिली प्रेरणा -

यदि शोधकर्ता किसी शोध समस्या को हल करना चाहता है और अपने चिन्तन-मनन के द्वारा समाधान में लगा हुआ है तो कभी-कभी उसे अचानक प्रेरणा मिलती है और वह समस्या समाधान का प्रस्तावित उत्तर तलाश कर शोध को दिशा प्रदान करता है। ऐसा प्रायः अन्वेषी प्रयोग में देखने को मिलता है। न्यूटन के प्रयोग, आर्किमिडीज के प्रयोग अचानक मिली प्रेरणा या सूझ पर आधारित थे।

6.3.7 अध्ययन में अनुरूपता -

कभी-कभी तुलनात्मक अध्ययन से भी उपकल्पना की रचना में सहायता मिलती है। जैसे-पशु-पक्षियों के व्यवहार के अध्ययन से मानव-व्यवहार की व्याख्या के लिए नये आधारों की खोज करना एक प्रकार से नवीन उपकल्पनाओं की ही खोज करना है। मेडिकल साइंस, मनोविज्ञान आदि में आज भी बड़े पैमाने पर जानवरों, पक्षियों पर शोध करके उसे मानव प्राणि पर लागू करने में इसी अनुरूपता के आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है।

6.4 एक उत्तम उपकल्पना की विशेषताएँ

जब कोई शोधकर्ता किसी शोध समस्या का प्रतिपादन कर उसका समाधान करने के लिए अगे बढ़ता है, तो उसके मन में समाधान के रूप में कई तरह के अस्थायी प्रस्ताव आते हैं। दूसरे शब्दों में, शोधकर्ता के मन में कई तरह के उपकल्पनाएं बनती हैं। प्रश्न यह उठता है कि इन उपकल्पनाओं में कौन अच्छा है और कौन अच्छा नहीं है, इसका निर्णय शोधकर्ता कैसे करेगा? मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को महत्वपूर्ण समझकर उस पर एक जुट होकर प्रकाश डाला है और बतलाया है कि अच्छे शोध उपकल्पना की पहचान उसकी कुछ कसौटियों या विशेषताओं के आधार पर की जा सकती है जो निम्नांकित हैं -

1) उपकल्पना को जांचनीय होना चाहिए- एक अच्छी शोध उपकल्पना की पहचान यह है कि उसका प्रतिपादन इस ढंग से किया जाना संभव हो कि उसकी जांच करने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सके कि वह संभवतः सही है या संभवतः गलत है। इसके लिए यह आवश्यक है कि उपकल्पना की अभिव्यक्ति विस्तृत ढंग से नहीं बल्कि विशिष्ट ढंग से किया जाना चाहिए। विस्तृत उपकल्पना प्रभावशाली तथा आकर्षक भले ही लगे, परन्तु उसकी जांच चूंकि ठीक ढंग से नहीं की जा सकती है, अतः वह एक अच्छी उपकल्पना नहीं हो सकती है। जांचनीय उपकल्पना से तात्पर्य वैसी उपकल्पना से होता है जिसे यह विश्वास के साथ कहा जाय कि वह सही है या गलत है। मैकग्यूगन (1990) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''एक उपकल्पना जिसे एक प्रस्ताव के रूप में व्यक्त किया जाता है, को यदि यह निर्धारित करना संभव है कि वह सही या गलत है, तो वह जांचनीय मानी जाती है। अगर यह निर्धारित करना संभव नहीं है कि प्रस्ताव सही है या गलत तो उपकल्पना को जांचनीय नहीं माना जाता है और उसे विज्ञान के लिए गुणरहित समझकर छांट दिया जाता है।''

2) अन्य उपकल्पनाओं के साथ तालमेल होना चाहिए- यदि शोधकर्ता द्वारा तैयार की गई उपकल्पना क्षेत्र की अन्य उपकल्पनाओं के अनुकूल हो, तो इसे एक अच्छी उपकल्पना समझा जाता है। हालांकि इस ढंग की अनुकूलता कोई आवश्यक नहीं है, परन्तु यदि उपकल्पना क्षेत्र के अन्य ज्ञानों एवं उपकल्पनाओं के विरोधी न होकर उनके अनुकूल होती है, तो उसे एक अच्छी उपकल्पना निश्चित रूप से माना जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई शोधकर्ता यह उपकल्पना तैयार करता है कि धनात्मक पुनर्वलन से सीखने की प्रक्रिया में बाधा पहुंचती है तो यह एक ऐसी उपकल्पना का उदाहरण होगा जो अपने क्षेत्र में अन्य उपकल्पनाओं तथा ज्ञान भंडार के विरोधी होगा और इसे एक उत्तम उपकल्पना की श्रेणी में नहीं रखा जायेगा।

3) उपकल्पना को मितव्ययी होना चाहिए- एक अच्छी उपकल्पना को मितव्ययी भी होना चाहिए। एक ही शोध समस्या के समाधान के लिए कई उपकल्पनाएं तैयार की जा सकती हैं। इनमें से जो सबसे मितव्ययी हो, उसे अच्छा समझकर हमें चुन लेना चाहिए। उपकल्पना में मितव्ययिता से तात्पर्य इस बात से होता है कि उसका स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसकी जांच करने में कम-से-कम समय एवं धन की जरूरत हो तथा अधिक-से-अधिक सुविधा प्राप्त हो। कुछ उपकल्पना ऐसी होती हैं जिनकी जांच करना मात्र इसलिए संभव नहीं हो पाता है कि उसमें अधिक समय, श्रम, धन आदि की जरूरत होती है और साथ-ही-साथ अनेकों तरह की कठिनाइयां सामने आ जाती हैं। इस तरह की उपकल्पना को एक अच्छी प्राक्कल्पना की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

4) तार्किक पूर्णता तथा व्यापकता का गुण होना चाहिए - उपकल्पना की यह विशेषता बहुत हद तक मितव्ययिता की विशेषता से संबंधित है। मनोवैज्ञानिक शोध तथा शैक्षिक शोध में कुछ उपकल्पना तो ऐसे होते हें जिनसे शोध समस्या का एक पर्याप्त उत्तर सीधे मिल जाता है क्योंकि वह अपने-आप में तार्किक रूप से काफी व्यापक एवं पूर्ण होता है। परन्तु, कुछ उपकल्पना ऐसी होती है जिनसे शोध समस्या का उत्तर तभी मिल पाता है जब अन्य कई उपकल्पनाएं तथा तदर्थ पूर्वकल्पनाएं न तैयार कर लिए गये हों। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उनमें तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता के आधार के अभाव होते हैं जिसक कारण वे स्वयं कुछ नयी समस्याओं को जन्म दे देते हैं और उनके लिए उपकल्पना तथा तदर्थ पूर्वकल्पना तैयार कर लिया जाना आवश्यक हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में हम ऐसी अपूर्ण उपकल्पना की जगह पर पहले तरह की उपकल्पना जिसमें तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता होती है, का ही चयन करते हैं।

5) अध्ययन क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त एवं तथ्यों से संबंधित होना चाहिए- किसी उपकल्पना को एक उत्तम उपकल्पना कहलाने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे एक क्षेत्र के मौजूदा किसी सिद्धान्त एवं तथ्य से संबंधित होना चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि शोधकर्ता एक ऐसी उपकल्पना विकसित कर लेता है जो उसे काफी दिलचस्प दीख पड़ती है परन्तु वह किसी सिद्धान्त या तथ्य से संबंधित नहीं होती है। इस तरह की उपकल्पना एक रूचिकर उपकल्पना भले ही हो परन्तु वैज्ञानिक रूप से एक उत्तम उपकल्पना नहीं हो सकती। जैसे, यदि कोई शोधकर्ता यह उपकल्पना तैयार करता है कि शरीर के रंग (गोरा, काला, सांवला आदि) में विभिन्नता होने से व्यक्ति की बुद्धि में परिवर्तन होता है, तो शोधकर्ता के लिए यह एक रूचिकर उपकल्पना भले ही हो, परन्तु इसे वैज्ञानिक रूप में एक उत्तम उपकल्पना नहीं माना जा सकता है क्योंकि कोई सिद्धान्त या मॉडल मनोविज्ञान का ऐसा नहीं है जिसमें ऐसी बात कही गयी हो।

6) उपकल्पना से अधिक-से-अधिक अनुमिति किया जाना संभव होना चाहिए सामान्य तथा उसका स्वरूप होना चाहिए- एक अच्छी उपकल्पना की यह भी एक विशेषता है कि उसका स्वरूप बिल्कुल विशिष्ट न होकर कुछ सामान्य होना चाहिए हालांकि बहुत अधिक सामान्य तथा बहुत अधिक विशिष्ट दोनों ही तरह की उपकल्पना उत्तम नहीं मानी जाती हैं। यदि उपकल्पना बीचों-बीच की है तो इसे उत्तम माना जाता है क्योंकि इससे अधिकतम यथार्थ अनुमिति प्राप्त हो जाती है जिससे एक ही साथ और एक ही बारी में कई तथ्यों की व्याख्या संभव हो पाती है। इस तरह की उपकल्पनाओं को बहुत अधिक सामान्य तथा बहुत अधिक विशिष्ट उपकल्पनाओं की तुलना में उत्तम माना जाता है। मैकग्यूगन (1990) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''सामान्य रूप से वैसी उपकल्पनाएं जिनसे बहुत से महत्वपूर्ण अनुमितियां की जाती हैं, अधिक गुणकारी उपकल्पना मानी जाती है।''

7) उपकल्पना को उपलब्ध वैज्ञानिक परीक्षणों एवं उपकरणों से संबंधित होना चाहिए- एक अच्छी शोध उपकल्पना को क्षेत्र में उपलब्ध वैज्ञानिक परीक्षणों से संबंधित होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, उपकल्पना में प्रस्तावित चर ऐसे हों जिनके मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों के पास साधन उपलब्ध हो। यदि ऐसा नहीं होता, तो फिर उस उपकल्पना में प्रस्तावित चरों की माप नहीं की जा सकती है और तब उपकल्पना की सत्यता की भी जांच संभव नहीं हो पायेगी। इस तरह की उपकल्पना को वैज्ञानिक घोषित कर दिया जाता है।

8) उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए- शोध उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए। संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट होने का मतलब यह है कि उपकल्पना में व्यवहृत संप्रत्यय वस्तुनिष्ठ ढंग से परिभाषित हो तथा परिभाषा ऐसी हो जिससे कुछ स्पष्ट अर्थ निकलता हो तथा वह अधिकतर लोगों को मान्य हो। परिभाषा तथा व्याख्या ऐसी नहीं हो जिसे शोधकर्ता की व्यक्तिगत दुनिया की उपज कहा जा सके तथा जिसका अर्थ सिर्फ वही समझता हो।

इस तरह से हम देखते हैं कि शोध मनोवैज्ञानिकों ने शोध उपकल्पना की कुछ ऐसी कसौटियों या विशेषताओं का वर्णन किया है जिनके आधार पर एक अच्छी शोध उपकल्पना की पहचान की जा सकती है।

6.5 सारांश

- उपकल्पना निर्माण में निम्नलिखित स्रोत सहायक होते हैं- समाज का सांस्कृतिक मूल्य; पूर्व में किए गए शोध; शोध-पुस्तकें, पत्रिकाएं, जर्नल, शोध-सार आदि, व्यक्तिगत अनुभव; विशेषज्ञों से वार्तालाप एवं विवेचन, सूझ या अचानक मिली प्रेरणा; अध्ययन में अनुरूपता।

- एक उत्तम शोध उपकल्पना की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं- (1) उपकल्पना को जाँचनीय होना चाहिए। (2) अन्य उपकल्पनाओं के साथ ताल-मेल होना चाहिए। (3) मितव्ययी होना चाहिए, (4) उसमें तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता का गुण होना चाहिए, (5) उपकल्पना को अध्ययन क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त एवं तथ्यों से सम्बन्धित होना चाहिए, (6) उपकल्पना से अधिक-से-अधिक अनुमिति किया जाना संभव होना चाहिए और उसका स्वरूप सामान्य होना चाहिए, (7) इसे उपलब्ध वैज्ञानिक परीक्षणों एवं उपकरणों से सम्बन्धित होना चाहिए तथा (8) उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए।

6.6 शब्दावली

- **सांस्कृतिक मूल्य**: वह मूल्य जिसके कारण कोई समाज अपनी पहचान बनाता है, जिन विशेषताओं के आधार पर वह जाना जाता है, उसे सांस्कृतिक मूल्य कहते हैं।

6.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

2) निम्नलिखित में से कौन एक उपकल्पना का स्रोता नहीं है?

(क) शोध - जर्नल (ख) व्यक्तिगत अनुभव

(ग) व्यक्ति का स्वास्थ्य (घ) पूर्व शोध

3) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य है कौन असत्य?

(क) एक अच्छी उपकल्पना जांचने योग्य होनी चाहिए।

(ख) उपकल्पना में तार्किक पूर्णता एवं व्यापकता का गुण होना चाहिए।

(ग) उपकल्पना को क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त एवं तथ्यों से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए।

(घ) उपकल्पना को संप्रत्ययात्मक रूप से अस्पष्ट होना चाहिए।

उत्तर: 1.(ग) व्यक्ति का स्वास्थ्य 2. क)सत्य ख) सत्य ग)असत्य घ)असत्य

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शोध उपकल्पना के विभिन्न स्रोतों का वर्णन करें।
2. एक अच्छी उपकल्पना की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं। उदाहरण सहित बतायें।

इकाई 7. चर:- अर्थ एवं प्रकार
(Variables: Meaning and Types)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 चर का अर्थ

7.4 स्वतंत्र चर

7.5 आश्रित चर

7.6 संगत चर या बहिरंग चर

7.6.1 प्रयोज्य संगत चर

7.6.2 परिस्थितिगत संगत चर

7.6.3 अनुक्रम संगत चर

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

किसी भी वैज्ञानिक शोध में चर, जिसे परिवर्त्य के नाम से भी जानते हैं, अपना केन्द्रीय महत्व रखता है। इसके बिना कोई भी प्रायोगिक अध्ययन संभव ही नहीं है। इस पर हम लोग प्रयोगात्मक शोध विधि के प्रसंग में चर्चा कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप चर का अर्थ एवं प्रकार, किसी शोध में चर की आवश्यकता, आश्रित चर एवं स्वतंत्र चर में अन्तर, स्वतंत्र चर क हस्तचालन के तरीके आदि पर विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। चरों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने से आपको यह लाभ होगा कि आप विभिन्न चरों का वर्गीकरण कर किसी शोध में उपयुक्त चरों का चयन करने एवं आवश्यक चर का हस्तचालन करने में सक्षम हो सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप-

- चरों का अर्थ एवं महत्व बतला सकें।
- स्वतंत्र एवं आश्रित चरों में भेद कर सकें।
- स्वतंत्र चरों के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकें।
- बहिरंग चरों को भिन्न-भिन्न भागों में बाँट सकें।
- स्वतंत्र चरों को हस्ताचालित कर एक सख्त प्रयोगात्मक परिस्थिति उत्पन्न करने में सक्षम हो सकें।

7.3 चर का अर्थ

वैज्ञानिक शोध में वैसे तथ्यों का संकलन आनुभविक रूप से किया जाता है जिसकी जाँच की जा सके, जिसे सत्यापित किया जा सके। यही तथ्य हमारे ज्ञान-भण्डार में वृद्धि करता है और सिद्धान्त के निर्माण में सहायक होता है। तथ्य तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिसमें नियंत्रित परिस्थिति में घटनाओं का क्रमबद्ध निरीक्षण करते हैं। क्रमबद्ध निरीक्षण से तात्पर्य है कि घटना जिस रूप में घटित हो उस रूप में उसका अध्ययन हो। यानी, घटना का अध्ययन जैसे-तैसे न करके यह देखा जाय कि उस पर किन-किन कारकों का प्रभाव पड़ रहा है और किन-किन कारकों को नियंत्रित रखने की आवश्यकता है। एक शोधकर्ता जब वैज्ञानिक शोध करता है तो वह एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें वैसे सभी कारक, जिनके अध्ययन की जरूरत नहीं है, नियंत्रित कर लिए जाते हैं और सिर्फ उन्हीं कारकों में बदलाव किया जाता है या बदलाव का निरीक्षण किया जाता है जिनका प्रभाव शोधकर्ता देखना चाहता है। ये सभी कारक व्यावहारिक विज्ञान में चर की कोटि में आते हैं क्योंकि चर का मतलब ही होता है- जिसमें बदलाव हो, जो स्थिर न रहे या जिसका स्वभाव परिवर्तित होने वाला हो। यही कारण है कि चर को परिवर्त्य भी कहते हैं। चर के सम्बन्ध में एक और आवश्यक बात याद रखना चाहिए कि चर सिर्फ बदलते रहने वाला ही नहीं होता, बल्कि यह मापने योग्य भी होता है। इसीलिए कहा जाता है कि चर किसी वस्तु, व्यक्ति या चीजों का वह गुण है जिसे मापा जा सके। यानी, जो मापने योग्य नहीं है, वह चर नहीं कहला सकता। मनोविज्ञान में अवगम, अधिगम, संवेग, बुद्धि, व्यक्तित्व, व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम या गुण, व्यक्तियों के अन्तर्सम्बन्ध, यौन, शिक्षा, सामाजिक-आर्थिक स्तर विभिन्न सामाजिक पहलू आदि चर के कुछ उदाहरण हैं। एक शोधकर्ता अभिप्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव देखना चाहता है तो वह अभिप्रेरणा के विभिन्न स्तर निर्धारित कर उसे में माप सकता है तथा इसके विभिन्न स्तरों का क्या प्रभाव व्यक्ति के अधिगम पर पड़ता है इसे भी अधिगम की माप कर बता सकता है। अतः अभिप्रेरणा और अधिगम दोनों ही चर कहलायेंगे, परन्तु दोनों ही चरों का प्रकार अलग-अलग होगा जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

चरों का मापन दो तरह से हो सकता है-परिमाणात्मक रूप में और गुणात्मक रूप में। यह चरों के स्वरूप पर निर्भर करता है। कुछ चर ऐसे होते हैं जिनका मापन सिर्फ परिमाणात्मक रूप से ही संभव है, जैसे- आयु, प्रयास, रक्तचाप, नाड़ी-गति, बुद्धि-लब्धि, लम्बाई, भार, तापमान आदि। दूसरी तरफ, कुछ चर ऐसे होते हैं जिन्हें गुणात्मक रूप से मापा जाता है, जैसे- सेक्स, धर्म, जाति, भाषा आदि। मनोविज्ञान, शिक्षा, योग, चिकित्सा आदि के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले चर ज्यादातर परिमाणात्मक श्रेणी के होते हैं।

मनोविज्ञान, शिक्षा, योग आदि के क्षेत्र में जो शोध होते हैं उनमें कई तरह के चरों का प्रयोग होता है। कुछ चर तो ऐसे होते हैं जिनके प्रभाव का अध्ययन करना शोधकर्ता का उद्देश्य होता है। दूसरे चर ऐसे होते हैं जिनका अध्ययन शोधकर्ता विस्तृत रूप में करना चाहता है और इन पर अन्य चरों के प्रभाव का अवलोकन करना उसका उद्देश्य होता है। प्रभाव डालने वाले और प्रभावित होने वाले चरों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे चर होते हैं जिनके प्रभाव को रोकने के लिए शोधकर्ता उन्हें नियंत्रित कर लेता है। चरों की इन्हीं विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में उन्हें निम्नलिखित तीन वर्गो में विभक्त किया गया है-

1. स्वतंत्र चर
2. आश्रित चर
3. संगत चर या नियंत्रित चर

7.4 स्वतंत्र चर

वैसा चर जिसके प्रभाव का अध्ययन शोधकर्ता करना चाहता है और अध्ययन करने हेतु उसमें अपनी इच्छानुसार जोड़-तोड़ या हस्तचालन करना है, स्वतंत्र चर कहलाता है। दूसरे शब्दों में, शोधकर्ता किसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में जिस चर के मूल्यों में/मात्राओं में परिवर्तन करके उस परिवर्तन का दूसरे चर पर असर देखना चाहता है, उसे स्वतंत्र चर कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई शोधकर्ता कार्य के घंटे का प्रभाव कर्मचारियों के कार्य तनाव पर देखना चाहता है। इस अध्ययन में शोधकर्ता पहले कर्मचारियों का कार्य तनाव उपयुक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा माप लेगा, फिर कर्मचारियों को अलग-अलग कार्य अवधि में कार्य करने को कहेगा तथा पुनः कुछ दिनों बाद उसके कार्य तनाव का मापन करेगा। यहाँ कार्य के घंटे एक स्वतंत्र चर के रूप में कार्यरत है क्योंकि शोधकर्ता उसका हस्तचालन कर रहा है। शोधकर्ता नित्य 6 घंटे, 7 घंटे, 8 घंटे की कार्य अवधि तय कर फिर कर्मचारियों के समान समूहों को अलग-अलग अवधियों (उपर्युक्त तय घंटों) में कुछ दिनों तक कार्य करवा कर देखेगा कि कितने घंटे नित्य कार्य करने पर कार्य तनाव कम होता है। जिस स्वतंत्र चर में प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ करता है उसे प्रयोगात्मक चर भी कहते हैं। हस्तचालन के तरीके के आधार पर प्रयोगात्मक चर दो प्रकार के होते हैं-

(अ) टाइप-ई स्वतंत्र चर तथा

(ब) टाइप-एस स्वतंत्र चर

जब प्रयोगकर्ता किसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में किसी स्वतेंत्र चर में जोड़-तोड़ सीधे या प्रयोगात्मक ढंग से करता है तो इसे 'टाइप-ई' स्वतंत्र चर कहते हैं। इसे सक्रिय स्वतंत्र चर भी कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में कार्य की अवधि का हस्तचालन (जोड़-तोड़) प्रयोगकर्ता सीधे करता है, जैसे - नित्य 6 घंटे की अवधि, 7 घंटे की अवधि, घंटे की अवधि। इसी प्रकार, सीखने की प्रक्रिया पर विषय या पाठ की लम्बाई का प्रभाव देखना, जैसे- पाँच शब्दों की सूची, दस शब्दों की सूची, बीस शब्दों की सूची आदि। इस तरह का जोड़-तोड़ प्रयोगात्मक ढंग से सीधे प्रयोगकर्ता अपनी योजनानुसार कर लेता है, अतः यह 'टाइप-ई' स्वतंत्र चर कहलाता हैं।

'टाइप-एस' स्वतंत्र चर वैसे चर को कहा जाता है जिसमें प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ सीधे न करके चयन द्वारा करता है। इसे गुण भी कहा जा सकता है। यदि प्रयोगकर्ता किसी आश्रित चर पर व्यक्ति की बुद्धि, अभिक्षमता, जाति, धर्म, आयु, यौन आदि का प्रभाव देखना चाहे तो इनमें से किसी भी चर का स्वतंत्र चर के रूप में प्रयोग एवं इनका हस्तचालन प्रयोगात्मक ढंग से या सीधे नहीं किया जा सकता क्योंकि एक ही व्यक्ति या समूह की जाति, धर्म, आयु, सेक्स आदि में प्रयोगकर्ता अपनी इच्छानुसार परिवर्तन नहीं ला सकता। ऐसी परिस्थिति में वह प्रयोज्यों का दो समूह बनायेगा-एक समूह में एक तरह की जाति, धर्म या आयु आदि वाले प्रयोज्य होंगे जबकि दूसरे समूह में इससे भिन्न जाति, धर्म या आयु आदि वाले प्रयोज्य होंगे। स्पष्ट है कि यहाँ प्रयोगकर्ता द्वारा दोनों ही समूह का निर्माण चयन पर आधारित होगा न कि उसमें सीधे या प्रयोगात्मक रूप से परिवर्तन करके, जैसे कि ऊपर 'टाइप-ई' के केस में किया गया।

स्वतंत्र चर 'ई' टाइप का हो या 'एस' टाइप का, प्रयोगकर्ता ऐसे चरों को कारण के रूप में व्यवहार करके उनके प्रभावों का पता लगाने का प्रयास करता है। अतः हम कह सकते हैं कि स्वतंत्र चर ऐसा चर है जिसे शोधकर्ता प्रयोगात्मक परिस्थिति में कभी तो सीधे हस्तचालित करके तो कभी चयन के द्वारा हस्तचालित करके इनके प्रभाव का अध्ययन आश्रित चर पर करता है। डी. एमैटो (1970) नामक मनोवैज्ञानिक ने स्वतंत्र चर को इसी रूप में परिभाषित करते हुए कहा है कि ''सामान्यतः स्वतंत्र चर वह कोई भी चर है जिसके प्रभावों को व्यवहार सम्बन्धी माप पर निर्धारित करने हेतु, प्रयोगकर्ता द्वारा उसका हस्तचालन सीधे तौर पर या चयन के द्वारा किया जाता है।''

प्रयोग के समय उसकी सक्रियता के परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र चर के तीन प्रकार बतलाये गए हैं - प्राणी चर, उद्दीपन चर तथा अनुक्रिया चर। प्राणी चर ऐसे स्वतंत्र चरों को कहते हैं जिनका सम्बन्ध प्रयोज्य के यौन, बुद्धि, प्रेरणा, थकान, अभ्यास, चिन्ता आदि से होता है। उद्दीपन चर ऐसे स्वतंत्र चरों को कहते हैं जिनका सम्बन्ध अध्ययन-विषय या अध्ययन-सामग्री से होता है। अधिगम में ऐसे चरों की भरमार है, जैसे - अध्ययन-सामग्री की कठिनाई, सरलता, जटिलता, लम्बाई, निरर्थकता, अर्थपूर्णता आदि उद्दीपन चर के उदाहरण हैं। अनुक्रिया चर ऐसे स्वतंत्र चर को कहते हैं जिनका सम्बन्ध उस प्रयोगात्मक परिस्थिति से है जिसमें प्रयोज्य अनुक्रिया करता है। प्रायोगिक वातावरण में उपस्थित शोरगुल, तापमान, आर्द्रता आदि अनुक्रिया चर के उदाहरण हैं।

स्वतंत्र चरों का हस्तचालन -

चाहे किसी भी प्रकार का स्वतंत्र क्यों न हो, प्रयोगकर्ता का उद्देश्य उसका हस्तचालन करके, यानी उसका विभिन्न मूल्य या स्तर तैयार करके आश्रित चर पर उसके प्रभाव का निरीक्षण या रिकार्डिंग करना होता है। प्रयोगकर्ता स्वतंत्र चर में हस्तचालन का कार्य निम्नलिखित तीन तरह से करता है -

(i) **'हा-नहीं' हस्तचालन-** इस तरह का हस्तचालन शोधकर्ता तब करता है जब स्वतंत्र चर का प्रकार ऐसा हो कि उसे एक अवस्था में उपस्थित किया जाय तथा दूसरी अवस्था में अनुपस्थित रखा जाय। इसे उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि शोधकर्ता परिणाम के ज्ञान का प्रभाव व्यक्ति के निष्पादन पर देखना चाहता है। अतः वह दो अवस्थाओं में प्रयोग करेगा। पहली अवस्था में वह प्रयोज्य को कार्य पूरा करने पर यह नहीं बतायेगा कि उसने कोई गलती भी की या कार्य सही तरह से पूरा किया। इसे ''बिना परिणाम के ज्ञान'' की अवस्था कहेंगे। दूसरी अवस्था में वह प्रयोज्य को प्रत्येक प्रयास के बाद किए गये कार्य को दिखा देगा ताकि उसे अपनी गलतियों का पता चल जाय। इसे ''परिणाम के ज्ञान'' की अवस्था

कहा जायेगा। इस प्रकार, उपर्युक्त उदाहरण में शोधकर्ता ने ''परिणाम के ज्ञान'' को, जो कि एक स्वतंत्र चर है ''हा-नहीं हस्तचालन'' के द्वारा हस्तचालित किया और उसके दोनों ही स्तरों के आश्रित चर, यानी, निष्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण किया। अधिगम पर अभिप्रेरणा का प्रभाव, कक्षा कार्य पर शोर-गुल का प्रभाव आदि में शोधकर्ता स्वतंत्र चरों (क्रमशः अभिप्रेरण एवं शोर-गुल) का हस्तचालन ''हाँ-नहीं'' हस्तचालन द्वरा करेगा।

(ii) **'यह-वह' हस्ताचालन-** इस तरह का हस्तचालन शोधकर्ता तब करता है जब उसे प्रयोग की विभिन्न स्थितियों में अलग-अलग प्रकार के स्वतंत्र चर के मूल्यों को प्रस्तुत करना होता है। उदाहरण के लिए, यदि शोधकर्ता अधिगम पर पुरस्कार-प्रकार का प्रभाव देखना चाहता है तो उसका शोध डिजाइन इस प्रकार का होगा कि प्रयोग की एक अवस्था में वह प्रयोज्य को एक खास तरह का पुरस्कार देगा (जैसे-रूप्या) जबकि दूसरी अवस्था में दूसरी तरह का (जैसे-शाबाशी) और फिर निरीक्षण करेगा कि किस प्रकार के पुरस्कार का कैसा प्रभाव प्रयोज्य के अधिगम पर पड़ता है। इसे ही 'यह-वह' हस्तचालन की संज्ञा दी जाती है।

(iii) **'अधिक-कम' हस्तचालन-** जब शोधकर्ता को स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों या मूल्यों का प्रभाव आश्रित चर पर देखना होता है तो वह प्रयोग की एक अवस्था में अधिक मूल्य का स्वतंत्र चर तथा दसरी अवस्था में कम मूल्य का स्वतंत्र चर प्रस्तुत करके उसके प्रभाव का निरीक्षण आश्रित चर पर करता है। पृष्ठोन्मुख अवरोध पर अति-अधिगम का प्रभाव इसका एक अच्छा उदाहरण है।

7.5 आश्रित चर

आश्रित चर वह चर होता है जिसके बारे में प्रयोगकर्ता कुछ पूर्वकथन करना चाहता है, जिस पर वह स्वतंत्र चर का प्रभाव देखना चाहता है। वह स्वतंत्र चर के मूल्य में परिवर्तन लाकर यह देखना चाहता है कि इस परिवर्तन का क्या प्रभाव आश्रित चर पर पड़ रहा है। वास्तव में, आश्रित वह चर होता है जिसे प्रयोगकर्ता सावधानीपूर्वक निरीक्षण करता है और उसे रेकार्ड करता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि एक प्रयोगकर्ता शोर-गुल का प्रभाव व्यक्ति के अवसाद पर देखना चाहता है तो यहाँ शोरगुल स्वतंत्र चर होगा जिसका हस्तचालन प्रयोगकर्ता स्वयं करेगा, परन्तु अवसाद आश्रित चर होगा क्योंकि यह शो-गुल की मात्रा और अवधि से प्रभावित होगा। प्रयोगकर्ता व्यक्ति के अवसाद का मापन करके उसका स्तर नोट कर लेगा तथा फिर उसे कुछ दिनों तक शोर-गुंल वाली परिस्थिति में रखकर उसके अवसाद का मापन करके यह देखेगा कि किस प्रकार शोर-गुल से अवसाद में बृद्धि या कमी होती है। यहाँ प्रयोगकर्ता का काम अवसाद का निरीक्षण करना एवं उसे रिकार्ड करते चलना है। इसीलिए करलिंगर (1986) ने स्वतंत्र चर को एक पूर्व-कल्पित कारण तथा आश्रित चर को एक पूर्वकल्पित प्रभाव माना है।

कैण्टोविज तथा रोडिगर (1984) का मानना है कि एक अच्छे आश्रित चर में विश्वसनीयता तथा संगतता अधिक पाई जाती है। यदि पूर्व में किये गए प्रयोग को हु-ब-हु दोहराया जाय, यानी, दूसरी बार में भी वही प्रयोज्य हो, वही स्वतंत्र चर हो तथा वही डिजाइन हो तो आश्रित चर पर ठीक वही प्राप्तांक आयेगा जो पहले आया है। यही आश्रित चर की विश्वसनीयता एवं संगतता होती है और ऐसे आश्रित चर को एक अच्छा चर माना जाता है।

7.6 संगत चर या बहिरंग चर

प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर की तरह के ही कुछ और चर होते हैं जिन्हें यदि प्रयोगकर्ता नियन्त्रित न करे तो वे आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं। इस तरह के चर को संगत चर कहते हैं। प्रयोगकर्ता नियन्त्रण के विभिन्न उपायों के द्वारा संगत चर के प्रभाव को आश्रित चर पर पड़ने से रोकता है। संगत चर को बाह्य चर, बहिरंग चर या नियंत्रित चर भी कहते हैं। दरअसल, किसी भी आश्रित चर को प्रभावित करने वाले कई कारक हो सकते हैं जो प्रयोगात्मक परिस्थिति में चर के रूप में कार्यरत होते हैं। इनमें से प्रयोगकर्ता जिनके प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है उन्हें वह हस्तचालित करता है- अतः वैसा चर स्वतंत्र चर के रूप में कार्य करने लगता हैं। शेष चरों को प्रयोगकर्ता उस प्रयोगात्मक परिस्थिति में नियंत्रित कर लेता है ताकि उनका अनचाहा व अनावश्यक प्रभाव आश्रित चर पर न पड़े। यही नियंत्रित चर संगत चर या बाह्य चर कहलाते हैं। चूँकि ये सभी बाहर से आश्रित चर को प्रभावित करते हैं (यदि इन्हें नियंत्रित नहीं किया जाय तो) इसीलिए इन्हें बहिरंग चर भी कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक प्रयोगकर्ता अधिगम की प्रक्रिया का अध्ययन करना चाहता है। वह अधिगम पर पाठ्य-सामग्री के स्वरूप का प्रभाव देखना चाहता है। यहाँ पर अधिगम एक आश्रित चर होगा तथा पाठ्य-सामग्री का स्वरूप एक स्वतंत्र चर होगा। पाठ्य-सामग्री के अतिरिक्त अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक, जैसे- प्रयोज्य की उम्र, यौन, स्वास्थ्य, बुद्धि, कमरे का तापमान, शोरगुल, समय, सीखने की विधि, पाठ्य-सामग्री की लम्बाई आदि सभी बहिरंग या संगत चर हैं जिन्हें यदि नियंत्रित न किया जाय तो वे आश्रित चर, यानी, अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते हैं, फलतः; प्रयोग की वैधता घट सकती है।

संगत चर का स्वरूप कई तरह का होता है। कुछ संगत चर प्रयोज्य से सम्बद्ध होते हैं, कुछ परिस्थिति से तथा कुछ प्रायोगिक अवस्थाओं से। इसी परिप्रेक्ष्य में संगत चरों को निम्नलिखित तीन प्रकारों में विभक्त किया गया हैं-

1. प्रयोज्य संगत चर
2. परिस्थितिगत संगत चर
3. अनुक्रम संगत चर

7.6.1 प्रयोज्य संगत चर-

वैसे संगत चर जो प्रयोज्य के व्यक्तिगत गुणों, जेसे- उम्र, यौन, बुद्धि, अभिप्रेरणा आदि, से सम्बन्धित होते हैं, प्रयोज्य संगत चर कहलाते हैं। इनमें से कुछ चर टाईप-एस श्रेणी के तथा कुछ टाईप-ई श्रेणी के होते हैं। यदि इन चरों को किसी प्रयोग या शोध में प्रयोगात्मक चर या स्वतंत्र चर के रूप में प्रयोग में नहीं लाया जाना हो तो इन्हें नियन्त्रित करना अत्यावश्यक होता है, वरना ये आश्रित चर पर अवांछित प्रभाव डाल सकते हैं।

7.6.2 परिस्थितिगत संगत चर-

वैसे संगत चर जो उन परिस्थितियों या पर्यावरण से सम्बन्धित होते हैं जिनमें प्रयोग या शोध किया जा रहा हो, परिस्थितिगत संगत चर कहलाते हैं। प्रयोग के समय वातावरण का तापमान, शोरगुल, प्रकाश, आर्द्रता आदि परिस्थितिगत संगत चर के रूप में प्रयोग या शोध को प्रभावित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रयोग के उपकरण,

कार्य की प्रकृति आदि भी परिस्थितिगत चर या पर्यावरणीय चर के रूप में आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं। अतः प्रायोगिक परिस्थिति में प्रयोगकर्ता इन परिस्थितिगत या पर्यावरणीय संगत चरों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है।

7.6.3 अनुक्रम संगत चर-

वैसे संगत चर जो प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य के एक ही समूह की जाँच करने से उत्पन्न होते हैं, अनुक्रम संगत चर कहलाते हैं। किसी भी प्रयोग में एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था, दूसरी के बाद तीसरी अवस्था आदि क्रम से आती रहती हैं और यदि इन अवस्थाओं में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य-समूह को कार्यरत रखा जाय तो प्राप्त परिणाम अभ्यास, थकान आदि जैसे कारकों से प्रभावित हो सकते हैं। ऐसा विभिन्न अवस्थाओं के अनुक्रम के कारण होता है। उदाहरणस्वरूप, प्रथम अवस्था में प्रयोज्य जहाँ तरोताजा रहता है, अन्तिम अवस्था में वहीं थका-थका महसूस कर सकता है; इसी प्रकार, प्रथम अवस्था में प्रयोज्य प्रायोगिक परिस्थिति में नया रहता है जबकि अन्तिम अवस्था तक वह परिस्थिति से रू-ब-रू हो चुका होता है। स्पष्ट है कि विभिन्न प्रायोगिक अवस्थाएं परिस्थितिगत संगत चर के रूप में कार्य करते हैं और प्रयोगकर्ता इनके कुप्रभाव को रोकने के लिए उचित नियंत्रण का प्रयास करता है।

7.7 सारांश

- चर वह है जो स्थिर न रहे, जिसमें बदलाव हो, जिसका स्वभाव परिवर्तित होने वाला हो और सबसे बढ़कर, जो मापने योग्य हो।
- चरों का मापन परिमाणात्मक रूप में भी हो सकता है, गुणात्मक रूप में भी।
- चरों को तीन वर्गो में विभक्त किया जा सकता है- स्वतंत्र चर, आश्रित चर तथा बहिरंग या संगत चर।
- जिस स्वतंत्र चर में प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ या हस्तचालन करता है उसे प्रयोगात्मक चर भी कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है- टाइप-ई स्वतंत्र चर तथा 'टाइप-एस' स्वतंत्र चर।
- स्वतंत्र चर का हस्तचालन तीन तरीके से किया जाता है - हाँ-नहीं, यह-वह, अधिक-कम।
- बहिरंग चर के तीन प्रकार होते हैं- प्रयोज्य चर, परिस्थितिगत चर तथा अनुक्रम चर। इन चरों को संगत चर भी कहते हैं और यदि इन्हें नियंत्रित न किया जाय तो स्वतंत्र चर के साथ मिलकर प्रयोगात्मक परिस्थिति में आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं।

7.8 शब्दावली

- **स्वतंत्र चर:** वह चर जिसके प्रभाव का अध्ययन प्रयोगकर्ता करना चाहता है और जिसमें जोड़-तोड़ करके उसके विभिन्न स्तर का मूल्य का निर्धारण प्रयोगकर्ता द्वारा किया जाता है, स्वतंत्र चर कहलाता है।

- **आश्रित चर**: वह चर जो स्वतंत्र चर से प्रभावित होता है और जिसे प्रयोगकर्ता प्रायोगिक परिस्थिति में मापता है, उसमें स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों/मूल्यों के प्रभाव से आये बदलाव को रेकार्ड करता है, आश्रित चर कहलाता है।

- **बहिरंग चर:** वह चर जिन्हें प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर के साथ मिलकर आश्रित चर को प्रभावित करने से प्रयोगकर्ता नियंत्रण विधियों का प्रयोग कर रोकता है, बहिरंग चर कहलाता है।

7.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) व्यक्ति की जाति या धर्म किस प्रकार का चर है?

   (क) गुणात्मक (ख) परिमाणात्मक

2) एक शोधकर्ता व्यक्ति के अवसाद पर शोर-गुल के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है तो यहाँ-

   (i) शोर-गुल एक.....चर के रूप में कार्य करेगा।

   (ii) अवसाद एक..... चर के रूप में कार्य करेगा।

   (स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के परिप्रेक्ष्य में उत्तर दें)

उत्तर: 1. गुणात्मक 2. (i) स्वतंत्र चर (ii) आश्रित चर

7.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।

- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।

- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चर को परिभाषित करें। वैज्ञानिक शोध में चर के महत्व पर प्रकाश डालें।

2. स्वतंत्र चर किसे कहते है? 'टाइप-ई' और 'टाइप-एस' स्वतंत्र चर में अन्तर स्पष्ट करें। उदाहरण दें।

3. चर कितने प्रकार के होते है? बाह्य चरों का नियंत्रण क्यों आवश्यक है?

4. बहिरंग चरों के विभिन्न प्रकारों को उदाहरण के साथ समझायें।

इकाई 8. चरों का नियंत्रण
(Control of Variables)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 चरों का नियंत्रण

8.4 चरों के नियंत्रण की विधियां

8.4.1 विलोपन

8.4.2 संतुलन

8.4.3 प्रति संतुलन

8.4.4 स्थिरता

8.4.5 रूपान्तरण

8.4.6 यादृच्छीकरण

8.5 सारांश

8.6 शब्दावली

8.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इकाई 13 में आपने चरों का अर्थ एवं चरों के प्रकार के सम्बन्ध में जानकारी हासिल की। आपने देखा कि किसी प्रकार स्वतंत्र चर को हस्तचालित कर आश्रित चर पर उसके प्रभाव का निरीक्षण किया जाता है। आपने यह भी जाना कि बहिरंग चर किस प्रकार स्वतंत्र चर के साथ मिलकर प्रयोगात्मक परिस्थिति में बाधा उत्पन्न करते हैं।

इस इकाई में आप बहिरंग चरों के नियंत्रण के विविध तरीकों से रू-ब-रू हो सकेंगे। आप जान सकेंगे कि प्रयोगात्मक प्रसरण को कम करने के लिए अनावश्यक चरों का नियंत्रण किन-किन विधियों द्वारा किया जा सकता है।

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह लाभ होगा कि आप चरों के नियंत्रण की विभिन्न तकनीकों से भली-भांति परिचित हो सकेगें तथा किसी प्रायोगिक अध्ययन में इन बहिरंग चरों के अनावश्यक प्रभाव से स्वतंत्र चर को मुक्त रख सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

- चरों के नियंत्रण का अर्थ समझ सकेंगे।
- नियंत्रण के विभिन्न तरीकों को वर्गीकृत कर सकेंगे।
- बहिरंग चरों के स्वरूप के अनुरूप नियंत्रण की विधियों का प्रयोग कर सकेंगे तथा
- किसी प्रयोग की सही योजना बनाकर नियंत्रण की सही प्रविधियों के सहारे उपकल्पना को सत्यापित करने में सक्षम हो सकेंगे।

8.3 चरों का नियंत्रण

जब भी हम कोई शोध या अध्ययन करते हैं तो वहां हमें अनावश्यक चरों के प्रभाव को रोक देने की आवश्यकता पड़ती है। इसे ही चरों का नियंत्रण कहते हैं क्योंकि किसी भी प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य आश्रित चर पर स्वतंत्र चर के प्रभाव का अध्ययन करना होता है। स्वतंत्र चर के अतिरिक्त अन्य चरों को, जो आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं, प्रयोगकर्ता नियंत्रित करने का प्रयास करता है ताकि उनसे उत्पन्न प्रसरण की मात्रा पर रोक लगाई जा सके। बहिरंग चरों के नियंत्रण से सभी अवांछित प्रसरण नियंत्रित हो जाते हैं जो वैसे चरों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं जिनके अध्ययन में शोधकर्ता की कोई रूचि नहीं होती।

अतः नियंत्रण का अर्थ इस ढंग से प्रयोग करना है कि प्राप्त परिणाम को निश्चित रूप से केवल प्रयोगात्मक चर या उस स्वतंत्र चर का प्रभाव माना जा सके जिसके प्रभाव को देखने के लिए प्रयोग किया गया है।

8.4 चरों के नियंत्रण की विधियां

जैसा कि ऊपर बताया गया, बहिरंग चर भी स्वतंत्र चर का ही रूप है, परनतु चूंकि शोधकर्ता इनके प्रभाव का अध्ययन नहीं करना चाहता, अतः वह इन्हें निम्नलिखित तरीकों से नियंत्रित करने का प्रयास करता है -

8.4.1 विलोपन -

विलोपन का अर्थ होता है हटा देना या निष्कासित कर देना। यह चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें प्रयोगकर्ता बहिरंग चरों को प्रयोगात्मक परिस्थिति से निष्कासित कर देता है ताकि आश्रित चर पर उसका प्रभाव अपने आप ही विलुप्त हो जाय। उदाहरण स्वरूप, सीखने पर पाठ्य-विषय की लम्बाई का प्रभाव या विषय की

सार्थकता का प्रभाव देखने के क्रम में यदि शोधकर्ता को लगे कि शोरगुल या तापमान आश्रित चर (सीखने) को प्रभावित कर सकता है तो वह ध्वनिनिरोधी (साउण्ड प्रूफ) तथा एयरकंडीशंड कमरा बनवाकर इन बहिरंग चरों को विलोपित कर सकता है। ऐसी स्थिति में शोरगुल या तापमान से उत्पन्न होने वाला प्रसरण अपने आप ही नियंत्रित हो जायेगा। इसी प्रकार, विस्मरण प्रयोग में यदि प्रयोगकर्ता विस्मरण पर पाठ की अति-अधिगम का प्रभाव देखना चाहता है तो यहाँ पाठ की अर्थपूर्णता एक बहिरंग चर के रूप में विस्मरण को प्रभावित कर सकता है। परन्तु यदि प्रयोगकर्ता अधिगम सामग्री के रूप में निरर्थक पदों का प्रयोग करता है तो चह पाठ की अर्थपूर्णता जैसे बहिरंग चर को प्रायोगिक परिस्थिति से स्वतः ही विलोपित करके बहिरंग चर को नियंत्रित कर सकता है। इस प्रकार, विलोपन बहिरंग चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें बहिरंग चर को प्रायोगिक परिस्थिति से निष्कासित करके उसके कुप्रभाव से बचा जाता है।

8.4.2 संतुलन-

संतुलन से तात्पर्य विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में बहिरंग चरों का प्रभाव समान रूप से पड़ने देने से है। यानी, स्वतंत्र चर के अतिरिक्त जो भी चर प्रयोगात्मक परिस्थिति में आश्रित चर को प्रभावित कर सकता है उसे प्रयोग की सभी अवस्थाओं में समान रूप से प्रभावित करने हेतु छोड़ दिया जाता है तथा स्वतंत्र चर को जिस अवस्था में प्रस्तुत करना होता है प्रस्तुत कर दिया जाता है। चूँकि, बहिरंग चर हर अवस्था में प्रस्तुत था, अतः यदि इसका कोई प्रभाव आश्रित चर पर पड़ा तो हरेक अवस्था में पड़ा न कि किसी खास अवस्था में। ऐसी स्थिति में बहिरंग चरों का प्रभाव अपने आप संतुलित होकर समाप्त हो जाता है और स्वतंत्र चर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगता है। इसे निम्नलिखित चित्र से समझा जा सकता है-

अवस्था-1 (प्रायोगिक अवस्था)	बहिरंग चर-अ	आश्रित चर
	बहिरंग चर-ब	
	स्वतंत्र चर की धनात्मक मात्रा	
अवस्था-2 (नियंत्रित अवस्था)	बहिरंग चर-अ	आश्रित चर
	बहिरंग चर-ब	
	स्वतंत्र चर की शून्य मात्रा	

उपर्युक्त चित्र में अवस्था-1 तथा अवस्था - 2 दोनों ही में दो बहिरंग चर (अ और ब) उपस्थित हैं जबकि स्वतंत्र चर को सिर्फ अवस्था-1 में प्रस्तुत किया गया है, अवस्था-2 में इसकी मात्रा शून्य है, यानी इसकी प्रस्तुति नहीं है। अब यदि अवस्था-1 और अवस्था-2 में आश्रित चर की मात्रा के स्तर में कोई परिवर्तन दिखाई पड़ता है तो निश्चित रूप से यह स्वतंत्र चर की प्रस्तुति के प्रभाव के कारण होगा जो कि अवस्था 1 में प्रस्तुत किया गया था। बहिरंग चरों के नियंत्रण की यही विधि संतुलन विधि कहलाती है। इसे एक उदाहरण द्वारा भी समझा जा सकता है। मान लीजिए,

एक प्रयोगकर्ता संवेगात्मक परिपक्वता पर उम्र के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। परन्तु उसे पता है कि इस अध्ययन में यौन एक महत्वपूर्ण बहिरंग चर है जो व्यक्ति की संवेगात्मक परिपक्वता को प्रभावित करता है। अतः प्रयोगकर्ता इसे संतुलन विधि के द्वारा नियंत्रित कर सकता है। वह यदि उम्र का हस्तचालन प्रयोज्यों के तीन उम्र वर्ग का चयन करके करना चाहता है (जैसे -10-15 वर्ष, 15-20 वर्ष, 20-25 वर्ष) तो इन तीनों ही उम्र वर्ग के प्रयोज्य एक ही यौन का रखकर अध्ययन करने पर बहिरंग चर ''यौन'' स्वतः ही संतुलन द्वारा नियंत्रित हो जायेगा। परन्तु, यदि अध्ययन ऐसा है जिसमें दोनों ही यौन के प्रयोज्यों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है तो शोधकर्ता सभी समूह में दोनों ही यौनके सदस्यों की बराबर-बराबर संख्या का चयन करके यौन के प्रभाव को संतुलित कर सकता है। इस प्रकार, संतुलन चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें नियंत्रित किए जाने वाले सभी चरों को प्रयोग की प्रत्येक अवस्था में कार्यरत करके उनके प्रभाव को नियंत्रित कर लिया जाता है और तब शोधकर्ता को स्वतंत्र चर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगता है। संतुलन द्वारा चरों के नियंत्रण में शोधकर्ता को प्रयोगात्मक समूह के साथ-साथ नियंत्रित समूह का निर्माण करना भी आवश्यक हो जाता है तथा प्रत्येक समूह के सभी प्रयोज्य को प्रारंभिक तौर पर तुल्य रखना होता है।

8.4.3 प्रति संतुलन -

प्रतिसंतुलन बहिरंग चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाओं से उत्पन्न अनुक्रम संगत चरों को नियंत्रित किया जाता है। यदि किसी प्रयोग में एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाएं हैं और प्रत्येक अवस्था में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य का एक ही समूह कार्यरत है तो इसमें दो तरह के क्रम प्रभाव उत्पन्न होने की संभावना है- अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव। ऐसा संभव है कि जब प्रयोज्य प्रयोगात्मक अवस्था 'ए' से प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में कार्य करना प्रारंभ करें, तो अभ्यास प्रभाव के कारण प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में उसका निष्पादन अर्थात् आश्रित चर पर इसका प्राप्तांक पहले से अधिक हो जाय या यह भी संभव है कि थकान प्रभाव के कारण उसका निष्पादन प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में पहले की तुलना में कम हो जाय। अतः थकान और अभ्यास के प्रभाव को कम करने के लिए प्रति संतुलन विधि का सहारा लिया जाता है और 'A' तथा 'B' दोनों ही अवस्थाओं के प्रयासों को आधा-आधा कर ''A-B-B-A'' क्रम में प्रस्तुत करके बहिरंग या संगत चरों को नियंत्रित कर लिया जाता है। प्रति संतुलन द्वारा अभ्यास और थकान का प्रभाव चूंकि प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था में समान रूप से पड़ता है, अतः प्रभाव अपने-आप नियंत्रित हो जाता है।

यहाँ यह भी उललेखनीय है कि प्रतिसंतुलन का बहिरंग चरों के नियंत्रण विधि के रूप में तभी प्रयोग किया जाना चाहिए जब प्रयोगात्मक अवस्था A से प्रयोगात्मक अवस्था B में होने वाला अन्तरण प्रतिसम न होकर अप्रतिसम हो। प्रतिसम अन्तरण तथा अप्रतिसम अन्तरण का एक-एक उदाहरण नीचे की तालिका में दिया गया है–

प्रयोगात्मक अवस्था A तथा B के बीच प्रतिसम अन्तरण तथा अप्रतिसम अन्तरण का नमूना

प्रयोज्यों की संख्या **(N = 10)**	प्रतिसम अन्तरण	अप्रतिसम अन्तरण
प्रयोज्यों की कुल संख्या का आधा (N = 5)	A B अन्तर 7 9 2	A B अन्तर 7 9 2
प्रयोज्यों की कुल संख्या का आधा (N = 5)	4 6 2	4 8 4

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि इसमें प्रयोज्यों की कुल संख्या 10 है जिसे दो भागों में बराबर-बराबर की संख्या में बांटा गया है। प्रत्येक भाग के प्रत्येक प्रयोज्य को दोनों प्रयोगात्मक अवस्थाओं (Aतथा B) में कार्यरत रखा गया है। तालिका से स्पष्ट है कि जब प्रयोज्यों को A अवस्था में पहले रखा गया तो उसे आश्रित चर पर 7 प्राप्तांक आया तथा बाद के B अवस्था में 9 प्राप्तांक आया। दोनों का अन्तर 9-7 = 2 आया। दूसरी तरफ बाकी आधे प्रयोज्यों का प्राप्तांक A अवस्था में 4 तथा B अवस्था में 6 आया। यहां भी अन्त 6 - 4 = 2 का है। अतः दोनों समूहों के लिए अवस्था A से B में प्राप्तांक का अन्तर 2-2 था। यह स्पष्टतः एक प्रतिसम अन्तरण का उदाहरण है। परन्तु तालिका के दायें कोने में अप्रतिसम अनतरण को दिखलाया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि प्रयोज्यों के आधे समूह द्वारा A तथा B में 2 प्राप्तांक का अन्तर है परन्तु बाकी आधे प्रयोज्यों के लिए A से B में 4 प्राप्तांक का अन्तर है जो स्पष्टतः अप्रतिसम अन्तरण को बतला रहा है। प्रतिसंतुलन का उपयोग ऐसी ही परिस्थितियों में किया जाता है जहां अप्रतिसम अन्तरण की संभावना होती है।

प्रतिसंतुलन द्वारा किस ढंग से अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव जैसे बहिरंग चरों का नियंत्रण होता है? इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है - मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता परिणाम ज्ञान का प्रभाव रेखा-आरेखण कार्य पर क्या पड़ता है, यह अध्ययन करना चाहता है।यह मान भी लिया जाय कि इसके लिए वह 10 प्रयोज्यों का यादृच्छिक ढंग से चयन करता है तथा इस अध्ययन में दो प्रयोगात्मक अवस्थाएं नी गई है। एक प्रयोगात्मक अवस्था वह है जिसमें प्रयोज्यों को अपने कार्य का परिणाम ज्ञान दिया जाता है (प्रयोगात्मक अवस्था A) तथा दूसरी प्रयोगात्मक अवस्था वह है जिसमें प्रयोज्यों को अपने कार्य का परिणाम ज्ञान नहीं दिया जाता है (प्रयोगात्मक अवस्था B)। इस प्रयोग में स्पष्ट है कि चूंकि प्रयोज्यों का एक ही समूह दोनों अवस्थाओं अर्थात A एवं B में कार्यरत है, अतः अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव हो सकते हैं। इन दोनों तरह के बहिरंग चरों को नियंत्रित करने का एक नमूना नीचे की तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

बहिरंग चरों का प्रतिसंतुलन द्वारा नियंत्रण

प्रयोज्यों का वितरण	प्रायोगिक अवस्थाएं	
कुल प्रयोज्यों की आधी संख्या (N = 5)	WKR	KR
प्रयोज्यों की बाकी आधी संख्या (N = 5)	KR	WKR

WKR = बिना परिणाम ज्ञान के

KR = परिणाम का ज्ञान

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि दोनों प्रयोगात्मक अवस्थाएं A और B प्रत्येक प्रयोज्य को समान संख्या में (अर्थात दो-दो बार) दी गयी हैं तथा प्रत्येक अवस्था समान संख्या में प्रत्येक सत्र में रखी गयी है। इसके अलावा प्रत्येक अवस्था एक-दूसरे से आगे एवं पीछे समान संख्या में दी गई है। इस तरह से स्पष्ट है कि प्रति संतुलन के लिए निम्नांकित तीन नियमों का पालन किया जाना आवश्यक है -

(i) प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था प्रत्येक प्रयोज्य को समान संख्या में दी जानी चाहिए।
(ii) प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था की संख्या प्रत्येक अभ्यास सत्र में एक समान होनी चाहिए।
(iii) प्रत्येक प्रयोगात्मक अवस्था एक-दूसरे के आगे और पीछे समान रूप से हो।

यहाँ हम आपको प्रतिसंतुलन तथा संतुलन में अन्तर भी बता देना उचित समझते हैं क्योंकि दोनों में समानता अधिक होने से कभी-कभी पाठक इन दोनों को एक ही समझने की भूल कर सकते हैं। दरअसल, प्रतिसंतुलन का प्रयोग वहां किया जाता है जहां प्रत्येक प्रयोज्य काक एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाओं में कार्यरत रहना पड़ता है और जहां प्रयोगकर्ता का प्रयास यह रहता है कि क्रम प्रभाव अर्थात् अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव का प्रभाव सभी प्रयोगात्मक अवस्थाओं में समान रूप से वितरित हो ताकि इसका प्रभाव आश्रित चर पर कोई विशिष्ट अन्तर न उत्पन्न कर दें। संतुलन का उपयोग वैसी परिस्थिति में किया जाता है जहां प्रत्येक प्रयोज्य को किसी एक ही अवस्था का विवेचन मिलता है, अर्थात् प्रत्येक प्रयोज्य को किसी एक ही अवस्था में रखा जाता है परन्तु बहिरंग चरों के प्रभाव को समान रूप से सभी प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह पर पड़ने दिया जाता है। ऐसा करने से बहिरंग चरों का प्रभाव अपने आप संतुलित होकर प्रभावहीन हो जाता है।

8.4.4 स्थिरता -

जब बहिरंग चरों को शोध या प्रयोगात्मक परिस्थिति में विलोपित करके नियंत्रित करना संभव नहीं होता है, तो उसके मान को सभी अवस्थाओं में एक समान रखकर अर्थात उसमें स्थिरता लाकर हम उसके प्रभावों को नियंत्रित कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में नियंत्रण की इस विधि में सभी प्रयोज्य को बहिरंग चर के एक ही मान से सामना कराया जाता है ताकि उसका पड़ने वाला प्रभाव सभी प्रयोज्यों पर एक समान हो। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई प्रयोग ऐसा है जिसमें 10 प्रयोज्य हैं, तो उन सभी को एक ही कमरे में बैठाकर यदि प्रयोग किया जाता है, तो इसमें कुछ बहिरंग चर जैसे कमरे की दिवाल का रंग, कमरे में रखे फर्नीचर तथा कमरा का अन्य तड़क-भड़क का प्रभाव सभी प्रयोज्य पर एक समान पड़ेगा। अतः इन चरों से आश्रित चर में होने वाला परिवर्तन सभी प्रयोज्यों के लिए एक समान होगा।

फलतः उनके प्रभाव से शोध के अन्तिम परिणाम में कोई विभेद नहीं होगा। परन्तु कुछ प्रयोज्यों को एक कमरे में तथा कुछ प्रयोज्यों को दूसरे कमरे में बैठाकर जब प्रयोग किया जाता है, तो संभव है, उपर्युक्त बहिरंग चर इन दोनों अवस्थाओं के लिए समान या समरूप न हों और तब उससे आश्रित चर में इस विभिन्नता के कारण अन्तर हो सकता है। उसी तरह कुछ जैविक चर जैसे प्रयोज्यों के यौन, उम्र, बुद्धि आदि कभी किसी-किसी प्रयोग में महत्वपूर्ण बहिरंग चर के रूप में उपस्थित होते हैं। ऐसे जैविक बहिरंग चरों को नियंत्रित करने के लिए शोधकर्ता सिर्फ उन प्रयोज्यों को चुनता है जो विशेष बहिरंग चर पर समान हो। जैसे, यदि सभी प्रयोज्य एक ही यौन के हों अर्थात पुरूष हों या स्त्री, तो स्वभावतः यौन का प्रभाव अपने आप निंयत्रित हो जायेगा। उसी ढंग से यदि सभी प्रयोज्यों की उम्र सीमा समान हो, जैसे, 14-16 वर्ष के उम्र के ही प्रयोज्यों को अध्ययन में रखा जाय तो उससे उम्र का प्रभाव अपने आप नियंत्रित हो जायेगा। उसी ढंग से बुद्धि के भी प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है। यदि शोध ऐसा है जिसमें दो या दो से अधिक समूह भाग लेंगे तो प्रत्येक समूह में समान बुद्धि लब्धि के प्रयोज्यों को रखकर समुलित समूह तैयार कर लिया जोयगा। इस प्रक्रिया को मिलान की प्रक्रिया कहा जाता है। उसी तरह से उपकरण से संबंधित बहिरंग चरों को निंयत्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रयोज्यों की अनुक्रियाओं को एक ही उपकरण द्वारा रिकार्ड किया जाय तथा सभी प्रयोगात्मक अवस्थाओं में समरूप उपकरण का प्रयोग किया जाय। ऐसी परिस्थिति में प्रयोगकर्ता विश्वास के साथ कह सकता है कि आश्रित चर में होने वाला परिवर्तन स्वतंत्र चर में किए गए जोड़-तोड़ के फलस्वरूप हुआ है।

8.4.5 रूपान्तरण -

बहिरंग चर के अवांछित प्रभाव को नियंत्रित करने का एक सीधा तरीका यह है कि उसे प्रयोग या शोध में एक स्वतंत्र चर के रूप में बदलकर उपयोग किया जाए। ऐसी अवस्था में बहिरंग चर का अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा और साथ ही प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता आश्रित चर के पड़ने वाले प्रभाव का ही विश्लेषण कर पायेगा। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय कि कोई शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता मद्यपान का प्रभाव टाइपिंग की गति पर क्या पडता है, यह देखना चाहता है। इसके लिए मान लिया जाय कि वह 20 प्रयोज्यों का चयन करता है जो समान उम्र, एक ही यौन तथा समान बुद्धि लब्धि के हैं। इनमें से 10 प्रयोज्यों को अल्कोहल पीने के 2 घंटे के बाद टाइपराइटर पर टाइप करने के लिए कहा जा सकता है। बाकी 10 प्रयोज्यों का दूसरा समूह बिना अल्कोहल लिए ही टाइपराइटर पर टाइप करने के लिए उसी समय बैठाया जा सकता है। इस प्रयोगात्मक परिस्थिति में एक महत्वपूर्ण बहिरंग चर टाईपराइटर का प्रकार है जिसमें आश्रित चर अर्थात् टाइपिंग की गति पभावित हो सकती है। सामान्यतः टाइपराइटर के दो प्रकार होते हैं - वैद्युत टाइपराइटर तथा मैन्युअल टाइपराइटर। जिस समूह को पहले प्रकार के टाइपराइटर पर टाइप करने के लिए कहा जायेगा स्वभावतः उसकी टाइपिंग गति उस समूह की अपेक्षा जिसे दूसरे प्रकार का टाइपराइटर दिया जायेगा, अधिक होगी। इस बहिरंग चर के प्रभाव को अर्थात टाइपराइटर के अन्तर के प्रभाव को अध्ययन में एक स्वतंत्र चर के रूप में बदल कर नियंत्रित किया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में प्रयोग के दो उद्देश्य हो जायेंगे- पहला, टाइपिंग गति पर अल्कोहल के प्रभाव का अध्ययन करना तथा दूसरा, टाइपिंग गति पर टाइपराइटर के अन्तरों के प्रभावों का अध्ययन करना। इस तरह से प्रयोग में अब दो समूह अर्थात अल्कोहल पीने वाला समूह (N = 10) और अल्कोहल नहीं पीने वाला (N = 10) समूह की जगह पर चार समूह हो जायेंगे जो नीचे की तालिका में प्रदर्शित है –

दो समूह डिजाइन का चार-समूह डिजाइन में रूपान्तरण

समूह A (मध्यपान करने वाला)	समूह B (मध्यपान नहीं करने वाला)
प्रयोज्य	प्रयोज्य

दो समूह डिजाइन

	समूह A (मध्यपान करने वाला)	समूह B (मध्यपान नहीं करने वाला)
वैद्युत टाइपराईटर	5 प्रयोज्य	5 प्रयोज्य
मैन्युअल टाइपराईटर	5 प्रयोज्य	5 प्रयोज्य

चार समूह डिजाइन

दो समूह डिजाइन में प्रयोगकर्ता समूह A तथा समूह B के माध्य की तुलना करके एक निष्कर्ष पर पहुंचेगा। इस डिजाइन में अल्कोहल का पीना स्वतंत्र चर है, टाइपिंग की गति आश्रित चर है तथा टाइपराइटर का प्रकार अर्थात् टाइपराइटर अन्तर प्रमुख बहिरंग चर है। चार समूह डिजाइन में प्रयोगकर्ता इस बहिरंग चर को अर्थात् टाइपराइटर के अन्तर को भी एक स्वतंत्र चर के रूप में बदल देता है। इसके परिणामस्वरूप अब प्रयोगकर्ता को चार माध्य ज्ञात करने होंगे - समूह A का माध्य, समूह B का माध्य, वैद्युत टाइपराइटर पर टाइप करने वाले समूह का माध्य तथा मैन्यूअल टाइपराइटर पर टाईप करने वाले समूह का माध्य। प्रथम माध्यों के अन्तर द्वारा टाईपिंग गति पर अल्कोहल के प्रभाव का पता चलेगा तथा अन्तिम दो माध्यों में अन्तर द्वारा टाइपिंग गति पर टाइपराइटर के अन्तरों का पता चलेगा।

8.4.6 यादृच्छीकरण-

बहिरंग चरों को नियंत्रित करने की उपर्युक्त पांच विधियों में किसी भी विधि का उपयोग जब किसी भी कारण से संभव नहीं हो तो, वैसी परिस्थिति में उन चरों का नियंत्रण यादृच्छीकरण की प्रविधि से किया जाता है। यादृच्छीकरण एक ऐसी प्रविधि है जिसमें किसी भी जीव (मनुष्य या पशु) को अध्ययन समूह में चुने जाने की संभावना बराबर-बराबर होती है। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाय कि किसी वर्ग में 3 छात्र हैं जिनमें से हमें 20 छात्रों का चयन यादृच्छिक ढंग से करना है। इसके लिए सबसे सरल तरीका यह होगा कि 30 छात्रों का नाम समान कागज के टुकड़ों पर लिखकर उसे समान ढंग से मोड़ दिया जाय और सभी को एक बाक्स या डिब्बे में रखकर तथा उसे हिलाडुलाकर मिश्रित कर दिया जाय। उसके बाद उसमें से एक-एक करके 20 कागज के टुकड़ों को निकाल लिया जाय। यह एक यादृच्छीकरण का उदाहरण है क्योंकि इसमें जब भी प्रयोगकर्ता बाक्स में कागज के किसी टुकड़ें को चुनने का प्रयत्न करता है, उस समय बाक्स में उपस्थित सभी टुकड़ों को चुने जाने की संभावना बराबर-बराबर होती है। यादृच्छीकरण की अन्य विधियां भी हैं, जिनमें यादृच्छिक संख्या के टेबुल का उपयोग एक महत्वपूर्ण विधि है।

प्रयोग या शोध में यादृच्छीकरण की प्रक्रिया में सिर्फ प्रयोज्यों का ही चयन यादृच्छिक ढंग से नहीं किया जाता है बल्कि उन्हें प्रयोगात्मक अवस्था तथा नियंत्रित अवस्था में यादृच्छिक ढंग से आवंटित भी किया जाता है।

यादृच्छीकरण की पूरी प्रक्रिया सम्पन्न होने पर सभी ज्ञात तथा अज्ञात बहिरंग चर प्रयोज्यों एवं विभिन्न अवस्थाओं को समान रूप से प्रभावित करते समझे जाते हैं। अतः उन सबों का प्रभाव स्वतंत्र चर पर यदि कुछ होता भी है, तो समान रूप से होता है। इसका शुद्ध परिणाम यह होता है कि बहिरंग चर का प्रभाव अपने आप नियंत्रित हो जाता है। यादृच्छीकरण की महत्ता पर टिप्पणी करते हुए मैकगगन ने कहा है, ''यादृच्छीकरण का महत्व यह है कि वह बहिरंग प्रभावों को, चाहे वे जैसे भी हों, यादृच्छिक ढंग से प्रयोगात्मक तथा नियंत्रित अवस्थाओं में बांट देता है। चाहे आप विशेष बहिरंग चरों को पहचान किये हों या न किये हों, इसका ऐसा ही संतुलनकारी प्रभाव होता है क्योंकि इसमें अज्ञात एवं अविशिष्ट बहिरंग चरों का प्रभाव सभी परिस्थितियों में समान रूप से वितरित हो जाता है।''

यादृच्छीकरण का एक उदाहरण हम इस प्रकार दे सकते हैं - मान लिया जाय कि किसी प्रयोग या शोध में प्रयोकर्ता यह अध्ययन करना चाहता है कि सीखने की प्रक्रिया सीखने की विभिन्न विधियों से किस प्रकार प्रभावित होती है। मान लिया जाय कि ऐसी विधियां तीन हैं, जिनके प्रभावों का वह अध्ययन करना चाहता है - विधि A, विधि B तथा विधि C । इस अध्ययन में विधि स्वतंत्र चर है तथा सीखने की प्रक्रिया आश्रित चर है एवं प्रयोज्यों के उम्र, यौन, बुद्धि, शौक्षिक स्तर आदि बहिरंग चर के उदाहरण हैं। मान लिया जाय कि प्रयोगकर्ता 30 छात्रों के समूह का यादृच्छिक ढंग से किसी विद्यालय से चयन करता है। इस अवस्था में तीन प्रयोगात्मक अवस्थाएं हैं क्योंकि तीन विधियां हैं, जिनके प्रभावों का अध्ययन करना है। अब प्रयोगकर्ता 30 यादृच्छिक ढंग से चुने गये छात्रों को तीन प्रायोगिक अवस्थाओं में यादृच्छिक ढंग से आवंटित करके प्रयोग की कारवाई शुरू करेगा। प्रयोज्यों का चयन यादृच्छिक ढंग से करने से तथा उनका विभिन्न अवस्थाओं में यादृच्छिक आवंटन करने से प्रयोज्यों के बीच उम्र, यौन, बुद्धि, शैक्षिक स्तर आदि बहिरंग चरों से उत्पन्न वैयक्तिक विभिन्नता सामान्यतः साम्य हो जाता है और तब उनका प्रभाव आश्रित चर पर विशिष्ट रूप से नहीं पड़ पाता है।

8.5 सारांश

- चरों के नियंत्रण से तात्पर्य प्रयोगात्मक परिस्थिति में उन बहिरंग चरों के प्रभावों को नियंत्रण में रखने से है जो अनावश्यक रूप से स्वतंत्र चर के साथ मिलकर आश्रित चर को प्रभावित करते हैं।
- चरों का नियंत्रण निम्नलिखित छः विधियों द्वारा किया जाता है - विलोपन, संतुलन, प्रति-संतुलन, स्थिरता, रूपान्तरण एवं यादृच्छीकरण।

8.6 शब्दावली

- **विलोपन:** चरों के नियंत्रण की ऐसी विधि जिसमें प्रयोगकर्ता बहिरंग चरों को प्रयोगात्मक परिस्थिति से निष्कासित कर देता है ताकि उसका प्रभाव स्वतः ही विलुप्त हो जाय।
- **संतुलन:** संतुलन से तात्पर्य विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में बहिरंग चरों का प्रभाव समान रूप से पड़ने देने से है।
- **रूपान्तरण:** जब बहिरंग चरों को स्वतंत्र चर में परिवर्तित करके उसके अवांछित प्रभाव को नियंत्रित किया जाता है तो उसे रूपान्तरण कहते हैं।

8.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. किसी प्रयोग में जब 'A' और 'B' दोनों ही अवस्थाओं के प्रयासों को अधा-आधा कर ABBA क्रम में प्रस्तुत करके थकान और अभ्यास के प्रभाव को नियंत्रित किया जाता है तो नियंत्रण की इस विधि को क्या कहते हैं?

2. चरों के नियंत्रण की किस विधि में बहिरंग चर को स्वतंत्र चर में बदलकर उपयोग में लाया जाता है?

उत्तर: 1. प्रतिसंतुलन 2. रूपान्तरण

8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चरों के नियंत्रण से आप क्या समझते हैं? नियंत्रण की विभिन्न विधियों का संक्षिप्त वर्णन करें।

2. प्रति संतुलन के द्वारा बहिरंग चरों का नियंत्रण किन परिस्थितियों में और कैसे होता है? उदाहरण देकर बतायें।

इकाई - 9. मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का स्वरूप एवं प्रकार

(Nature and Types of Psychological Tests)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण का स्वरूप

9.3.1 एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विशेषताएँ

9.4 मनोवैज्ञनिक परीक्षण के प्रकार

9.4.1 परीक्षण प्रशासन की शर्तों की कसौटी

9.4.2 अंकन की कसौटी

9.4.3 अनुक्रिया से सम्बद्ध समय सीमा की कसौटी

9.4.4 एकांशों के स्वरूप की कसौटी

9.4.5 मानकीकरण की कसौटी

9.4.6 उद्देश्य की कसौटी

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने चर के विषय में जानकारी प्राप्त की और इसके महत्व का अध्ययन किया। आपने यह भी देखा कि किस प्रकार किसी शोध में, खासकर प्रयोगात्मक शोध में, चरों का हस्तचालन एवं नियंत्रण किया जाता है। आपने आश्रित चर के निरीक्षण एवं मापन के बारे में भी पढ़ा।

प्रस्तुत इकाई में चरों के मापन में उपयोगी एवं अत्यन्त ही लोकप्रिय तकनीक के रूप में विख्यात मनोवैज्ञानिक परीक्षण के बारे में आप जानकारी प्राप्त करेंगे और यह भी देखेंगे कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न प्रकारों का आधार क्या है, यानी, किन-किन कसौटियों के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न रूप विकसित हुए हैं।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की जानकारी एवं इनके विभिन्न प्रकारों का ज्ञान जहां आपको चरों के मापन में इनके उपयोग में सहायता प्रदान करेगा वही मापनी के रूप में परीक्षण के निर्माण एवं विकास मं भी आपका मार्गदर्शन करेगा।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के स्वरूप पर प्रकाश डाल सकें।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण को परिभाषित कर उसकी विशेषताऐं बतला सकें।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रकार की विभिन्न कसौटियों को रेखांकित कर सकें तथा
- विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में अन्तर स्पष्ट कर सकें।

9.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण का स्वरूप

परीक्षण का अर्थ जाँच है। बुखार आ जाने पर थर्मामीटर से शरीर का तापक्रम जाँचते हैं, शरीर में बीमारी होने पर डाक्टर सामान्य स्वास्थ्य की जाँच तो करता ही है, जरूरत पड़ने पर मल-मूत्र खून आदि की जाँच भी करवाता है। यहाँ जो जाँच होती है वह किसी-न-किसी उपकरण या मशीन द्वारा होती है। परन्तु, मनोविज्ञान, शिक्षा,समाजशास्त्र आदि के क्षेत्रों में व्यक्ति के आन्तरिक गुणों की जाँच की जाती है, उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं की जाँच की जाती है, उसके सामाजिक पहलुओं की जाँच की जाती है। यहाँ जो जाँच की जाती है उसे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की संज्ञा दी जाती है क्योंकि यहाँ जाँच किसी मशीन द्वारा नहीं होती, बल्कि शाब्दिक या अशाब्दिक प्रतिक्रियाओं या अनुक्रियाओं के माध्यम से होती है, प्रश्नों की श्रृंखलाओं के माध्यम से होती है। इसीलिए परीक्षण का शब्दकोशीय अर्थ प्रश्नों की एक ऐसी श्रृंखला है जिसके आधार पर कुछ सूचनाएं इकट्ठा की जाती हैं। इस आधार पर यदि हम किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण को परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक ऐसी मानकीकृत प्रविधि है जिसके द्वारा व्यक्ति के एक या एक से अधिक मनोवैज्ञानिक गुणों का गुणात्मक या परिमाणात्मक ढंग से कुछ शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं के माध्यम से मापन होता है। इसे और स्पष्ट करते हुए बीन (1953) नामक मनोवैज्ञानिक ने कहा है- ''मनोवैज्ञानिक परीक्षण उद्धीपनों का एक ऐसा संगठित अनुक्रम है जो कुछ मानसिक प्रक्रियाओं, शीलगुणों या विशेषताओं का गुणात्मक मूल्यांकन करने अथवा परिमाणात्मक ढंग से मापने हेतु बनाया जाता है। '' फ्रीमैन (1965) नामक मनोवैज्ञानिक ने मनोवैज्ञानिक परीक्षण को एक मानकीकृत उपकरण बताया है जो शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य व्यवहारों के सहारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक या अधिक पहलुओं को वस्तुनिष्ठ रूप में मापता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण (क) एक मानकीकृत परीक्षण है जिसमें विश्वसनीयता, वैधता, प्राप्तांक-लेखन में वस्तुनिष्ठता आदि के गुण पाये जाते हैं, (ख) इसके द्वारा दो या दो से अधिक व्यक्तियों की तुलना किसी भी शीलगुण या मानसिक प्रक्रिया के एक या अनेक पहलुओं पर की जाती है, (ग) इसके द्वारा व्यक्तियों के शीलगुणों का मापन गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों ही तरह से होता है। अतः कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यक्तियों के बीच वैयक्तिक भिन्नता की माप का एक मानकीकृत साधन है।

9.3.1 एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की विशेषताएँ-

जैसा कि हमने मनोवैज्ञानिक परीक्षण की परिभाषाओं में देखा कि व्यक्तियों के शीलगुणों, व्यवहारों की तुलना करने या विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं की वस्तुनिष्ठ माप करने की बात हो, मनोवैज्ञानिक परीक्षण का मानकीकृत होना तथा उसमें एक उत्तम परीक्षण के अन्य गुणों का विराजमान होना अत्यावश्यक है अन्यथा कोई भी परीक्षण एक उत्तम परीक्षण नहीं कहला सकता। ये गुण या विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1) **वस्तुनिष्ठता-** वस्तुनिष्ठता किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण की पहली एवं महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अभाव में कोई भी परीक्षण एक उत्तम परीक्षण कहला ही नहीं सकता। वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य किसी परीक्षण का मूल्यांकनकर्ता या परीक्षक के वैयक्तिक कारकों, जैसे- उसकी अपनी इच्छा, पूर्वग्रह, पक्षपात, आदि, के प्रभाव से मुक्त रहना है। यानी, जब किसी परीक्षण का अंकन करने में परीक्षकों के बीच आपसी सहमति हो तो परीक्षण को वस्तुनिष्ठ कहा जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण में वस्तुनिष्ठता दो प्रकार की होती है-

   (क) एकांशों की वस्तुनिष्ठता

   (ख) अंकन की वस्तुनिष्ठता

एकांशों की वस्तुनिष्ठता का मतलब यह है कि परीक्षण के एकांश इस प्रकार के हों कि सभी व्यक्ति उससे एक ही तरह का अर्थ निकाल सकें। यानी, परीक्षण का कोई भी एकांश द्वि-अर्थक या संदिग्ध अर्थ वाला नहीं हो। ऐसा तभी संभव है जब परीक्षण के सभी एकांश स्पष्ट एवं सरलतम शब्दों में लिखे गए हों, अर्थात् उसमें किसी भी तरह की कोई अस्पष्टता नहीं हो। इतना ही नहीं, एकांशों में पूर्ण वस्तुनिष्ठता के लिए परीक्षण-निर्माता इन एकांशों का एकांश विश्लेषण करके उपयुक्त सांख्यिकीय विधि के सहारे अनावश्यक एवं अनुपयुक्त एकांशों की छंटनी कर देता है और परीक्षण में सिर्फ वैसे एकांशों को रखता है जो उत्तम होते हैं तथा परीक्षण के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

अंकन की वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य परीक्षण के प्रत्येक एकांश को परीक्षकों द्वारा प्रदान किए जाने वाले अंकों में संगति से है। यानी, एकांश का अंकन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि परीक्षक का अपना पूर्वग्रह या पक्षपात उसे प्रभावित न कर पाये। इसके लिए परीक्षण निर्माणकर्ता प्रत्येक एकांश हेतु एक निश्चित उत्तर तैयार करता है तथा उस निश्चित उत्तर के दिए जाने पर एक निश्चित अंक प्रदान करने की व्यवस्था करता है।

2) **विश्वसनीयता-** एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता उसकी विश्वसनीयता है। विश्वसनीयता से तात्पर्य परीक्षण प्राप्तांकों के बीच संगति से है। इसे परीक्षण प्राप्तांकों की परिशुद्धता के रूप में भी जाना जाता है। यदि कोई परीक्षण बार-बार प्रशासित किए जाने पर भी हर बार एक ही जैसा प्राप्तांक प्रदान करे तो उसे एक विश्वसनीय परीक्षण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी परीक्षण पर आज के प्राप्तांक और

कुछ समय बाद के प्राप्तांक में संगति दिखाई देती है तो इस 'कालिक संगति' को परीक्षण की विश्वसनीयता के रूप में जाना जाता है। इसके अतिरिक्त, परीक्षण की 'आन्तरिक संगति' को भी उसकी विश्वसनीयता की संज्ञा दी जाती है। आन्तरिक संगति से तात्पर्य एक ही परीक्षण के दो अर्द्ध-भागों के बीच पायी जाने वाली प्राप्तांक संगति या प्राप्तांक तुल्यता से है। यदि किसी परीक्षण के कुल एकांशों को दो बराबर भागों में विभक्त कर दिया जाय और प्रत्येक भाग को किसी प्रतिदर्श पर एक ही साथ प्रशासित किया जाय तो दोनों भागों पर के प्राप्तांकों में जितनी ज्यादा संगति होगी, परीक्षण की विश्वसनीयता उतनी ही अधिक होगी। इसे ही परीक्षण की आन्तरिक संगति के नाम से भी जाना जाता है। अतः कहा जा सकता है कि ''परीक्षण प्राप्तांकों के बीच संगति की मात्रा ही उसकी विश्वसनीयता है।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसी परीक्षण की विश्वसनीयता उसकी 'कालिक संगति' एवं 'आन्तरिक संगति' का सूचक है। इन दोनों संगति का मापन सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करके किया जाता है। जिस सह-सम्बन्ध गुणांक से परीक्षण की आन्तरिक संगति का पता चलता है उसे 'आन्तरिक संगति गुणांक' या 'अल्फा गुणांक' कहते हैं। जब किसी परीक्षण को एक ही प्रतिदर्श पर दो बार प्रशासित करके (एक खास अन्तराल, प्रायः 14 दिनों पर) प्राप्तांकों के दोनों वितरणों के बीच सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है तो उसे 'कालिक स्थिरता गुणांक' कहते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि परीक्षण की विश्वसनीयता उसका ''आत्म-सहसम्बन्ध'' सूचित करती है क्योंकि परीक्षण में आत्म-सहसम्बन्ध जितना ही अधिक होगा उसकी विश्वसनीयता उतनी ही अधिक होगी।

3) **वैधता-** वैधता किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है जो यह बतलाती है कि परीक्षण द्वारा ठीक उन्हीं गुणों या विशेषताओं का मापन हो रहा है जिसे मापनेके लिए उसे बनाया गया है। दूसरे शब्दों में, परीक्षण की वैधता उसकी वह क्षमता है जिसके सहारे वह उस गुण या कार्य को मापता है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया था। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई परीक्षण बुद्धि मापने के लिए बनाया गया है और वास्तव में वह व्यक्ति की बुद्धि मापने में सक्षम है, यानी, परीक्षण के द्वारा सही मायने में व्यक्ति की बुद्धि की माप हो पाती है, तो इसे एक वैध परीक्षण माना जायेगा। परन्तु, यदि यह परीक्षण बुद्धि की सही माप न करके किसी अन्य गुण की माप करता है, जैसे- समस्या समाधान व्यवहार या शैक्षिक उपलब्धि आदि की, तो इस परीक्षण को वैध नहीं कहा जायेगा।

किसी परीक्षण को जिस गुण को मापने के लिए बनाया गया है वास्तव में उसी गुण को माप रहा है या नहीं इसकी जानकारी परीक्षण निर्माणकर्ता किसी बाह्य कसौटी के आधार पर प्राप्त करता है। इसके लिए वह एक बाह्य कसौटी का चयन करता है जो ठीक उसी गुण या क्षमता को मापता है जिसे मापने के लिए वर्तमान परीक्षण को बनाया गया है। यदि वर्तमान परीक्षण इस बाह्य कसौटी के साथ सह-सम्बन्धित हो जाता है तो कहा जायेगा कि वर्तमान परीक्षण ठीक उसी गुण या क्षमता की माप कर रहा है जिसे मापने के लिए इसे बनाया गया था। अतः परीक्षण की वैधता को किसी बाह्य कसौटी के साथ सह-सम्बन्ध के रूप में भी जाना जा सकता है।

4) **मानक-** मानक मनोवैज्ञानिक परीक्षण की एक ऐसी विशेषता है जो परीक्षण के प्राप्तांक को सार्थक बनाता है। कोई भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण तब तक उत्तम एवं दुरूस्त नहीं कहला सकता जब तक कि उसका मानक तय नहीं हो जाय। मानक किसी प्रतिनिधिक प्रतिदर्श का परीक्षण पर एक औसत प्राप्तांक होता है। इसी के परिप्रेक्ष्य में परीक्षण पर आये अन्य प्राप्तांकों की व्याख्या की जाती है। उसका अर्थ निकाला जाता है। इसके बिना परीक्षण

प्राप्तांक निरर्थक है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यदि दस वर्ष के एक बालक का बुद्धि परीक्षण पर 50 अंक है तो इससे यह पता नहीं चलता कि वह बालक तेज है, मन्द है या फिर औसत बुद्धि का है। परन्तु, यदि उसी समूह के दस वर्ष के बालकों का औसत अंक 40 आता है तो कहा जा सकता है कि 50 अंक प्राप्त करने वाला बालक तेज बुद्धि का है। इसी समूह का कोई अन्य बालक यदि उसी बुद्धि परीक्षण पर 30 अंक लाता है तो उसे मन्द बुद्धि का कहा जायेगा। अतः एक मानक को अधिक निर्भर योग्य एवं विश्वसनीय होने के लिए यह आवश्यक है कि इसका परिकलन एक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर होना चाहिए। ऐसा परीक्षण जिसके प्राप्तांकों की व्याख्या करने के लिए मानक तैयार किया जाता है, उसे मानक-संदर्भित परीक्षण कहा जाता है।

स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में मानक का स्थान महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में परीक्षण पर प्राप्त अंकों की अर्थपूर्ण व्याख्या संभव नहीं है।

9.4 मनोवैज्ञानिक परीक्षण के प्रकार

अभी तक आप ने मनोवैज्ञानिक परीक्षण के स्वरूप एवं उसकी विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की। आपने देखा कि एक अच्छा मनोवैज्ञानिक परीक्षण अपने में वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता, वैधता व मानकीकरण का गुण समाहित किए रहता है। अब हम यहाँ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न प्रकारों की चर्चा करेंगे। चूँकि मनोवैज्ञानिक परीक्षण किसी खास गुण, विशेषता, व्यवहार या मानसिक प्रक्रिया को मापने हेतु बनाया जाता है। अतः विभिन्न कसौटियों के आधार पर इसके प्रकारों में भी भिन्नता पाई गई है। कुछ महत्वपूर्ण कसौटियां, जिनके आधार पर हम मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण करते हैं, निम्नलिखित हैं-

(i) परीक्षण प्रशासन की शर्तों की कसौटी
(ii) अंकन की कसौटी
(iii) अनुक्रिया से सम्बद्ध समय-सीमा की कसौटी
(iv) एकांशों के स्वरूप की कसौटी
(v) मानकीकरण की कसौटी
(vi) उद्देश्य की कसौटी

9.4.1 परीक्षण प्रशासन की शर्तो की कसौटी-

कोई भी परीक्षण एक समय में किसी एक व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है या फिर एक बड़े समूह पर। परीक्षण प्रशासन की शर्तो की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण के दो प्रकार बताये गये हैं-

(क) वैयक्तिक परीक्षण तथा

(ख) सामूहिक परीक्षण

1) **वैयक्तिक परीक्षण-** वैयक्तिक परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसे एक समय में एक ही व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है। इस परीक्षण को प्रशासित करने हेतु परीक्षणकर्ता या शोधकर्ता को विशेष

प्रशिक्षण या परीक्षण के विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रायः विद्यालयों में कार्यरत मनोवैज्ञानिक या परामर्शदाता वैयक्तिक परीक्षणों का प्रयोग छोटे-छोटे बालकों को प्रेरित करने या उनके किसी शीलगुण विशेष की जानकारी प्राप्त करने के लिए करते हैं। वैयक्तिक परीक्षण के प्रशासन के दौरान परीक्षक को सतर्क रहना पड़ता है और परीक्षण में दिए गये निर्देशों के अनुरूप व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर अनुक्रिया दाता से अनुक्रिया लेनी पड़ती है। बुद्धि मापन हेतु निर्मित कई परीक्षण वैयक्तिक परीक्षण स्वरूप के हैं जिनमें कोह द्वारा निर्मित 'ब्लॉक डिजाइन बुद्धि परीक्षण' महत्वपूर्ण है।

2) **सामूहिक परीक्षण-** सामूहिक परीक्षण उस परीक्षण को कहा जाता है जिसका प्रशासन एक समय में सामान्यतः एक से अधिक व्यक्तियों पर या व्यक्ति-समूह पर एक ही साथ किया जाता है। ऐसे परीक्षण के प्रशासन में परीक्षणकर्ता या परीक्षक का बहुत प्रशिक्षित या ज्ञानी होना आवश्यक नहीं है। कम प्रशिक्षित परीक्षक भी परीक्षण प्रशासन की अच्छी भूमिका निभा लेते हैं। बुद्धि मापनहेतु निर्मित श्याम स्वरूप जलोटा का मानसिक बुद्धि परीक्षण, एम0सी0 जोशी का मानसिक बुद्धि परीक्षण सामूहिक परीक्षण का अच्छा उदाहरण है।

15.4.2 अंकन की कसौटी-

अंकन को प्राप्तांक लेखन भी कहते हैं। किसी परीक्षण के प्रश्नों या कथनों का उत्तर देने पर अंक देने की प्रक्रिया होती है। अंकन की कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है-

(क) वस्तुनिष्ठ परीक्षण

(ख) आत्मनिष्ठ परीक्षण

1) **वस्तुनिष्ठ परीक्षण-** वस्तुनिष्ठ परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिनके उत्तरों को अंक देने की विधि अर्थात् प्राप्तांक-लेखन विधि स्पष्ट होती है और वह परीक्षकों के आत्मगत निर्णय से बिल्कुल ही प्रभावित नहीं होती है। ऐसे परीक्षणों के एकांशों के उत्तर का अंकन में सभी परीक्षक एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। बहु-विकल्पी एकांश, सही गलत एकांश तथा मिलान-एकांश वाले परीक्षण वस्तुनिष्ठ परीक्षण होते हैं।
2) **आत्मनिष्ठ परीक्षण-** आत्मनिष्ठ परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिनके एकांशों के उत्तरों को अंक देने की विधि में काफी भिन्नता पाई जाती है। निबन्धात्मक परीक्षा जिसका प्रयोग शिक्षक कक्षा के उपलब्धियों की जाँच करने में अक्सर करते हैं आत्मनिष्ठ परीक्षण का अच्छा उदाहरण है।

9.4.3 अनुक्रिया से सम्बद्ध समय-सीमा की कसौटी-

परीक्षण के एकांशों का उत्तर कोई अनुक्रियादाता या परीक्षार्थी कितनी देर में देगा यह भी परीक्षण बनाते समय शोधकर्ता द्वारा तय कर दिया जाता है। परीक्षण के एकांशों के प्रति अनुक्रिया करने की समय सीमा के आधार पर परीक्षण को दो भागों में बाँटा गया है-

(क) क्षमता परीक्षण तथा

(ख) गति परीक्षण

1) **क्षमता परीक्षण-** क्षमता परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसके सभी एकांशों का उत्तर देने का पर्याप्त समय छात्रों को दिया जाता है। ऐसे एकांशों की कठिनता स्तर भिन्न-भिन्न होती है। इस परीक्षण का उद्देश्य यह मापना होता है कि व्यक्ति को किसी वस्तु, तथ्य, घटना आदि के बारे में कितना ज्ञान है।
2) **गति परीक्षण-** गति परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें एक सख्त समय सीमा होती है और उसके भीतर ही व्यक्तियों को सभी एकांशों का जवाब देना होता है। ऐसे परीक्षण के एकांश आसान होते हैं और उनकी कठिनता-स्तर लगभग समान ही होती है। ऐसे परीक्षण का मूल उद्देश्य यह परख करना होता है कि कितनी तेजी से छात्र किसी कार्य को कर सकते हैं। अधिकतर लिपिक अभिक्षमता परीक्षण इसी श्रेणी के परीक्षण होते हैं। डी.ए.टी. (डिफरेशिंयल एप्टीच्यूड टेस्ट) गति परीक्षण का एक उत्तम उदाहरण है।

सही अर्थ में बहुत कम ही परीक्षण पूर्णतः क्षमता परीक्षण या पूर्णतः गति परीक्षण होते हैं। एक ही परीक्षण एक छात्र के लिए गति परीक्षण का काम कर सकता है यदि उसके लिए प्रश्न आसान है किन्तु वही परीक्षण दूसरे छात्र के लिए जिन्हें उनके एकांश कठिन लगते हैं, क्षमता परीक्षण का काम कर सकता है।

9.4.4 एकांशों के स्वरूप की कसौटी-

काई परीक्षण पढ़े-लिखे लोगों के लिए बनाया गया या अनपढ़ों के लिए। उसके एकांश पढ़कर जवाब देने लायक हैं या कुछ चित्र बनाकर या निर्माण करके। इस कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नांकित चार भागों में बाँटा गया है-

(क) शाब्दिक परीक्षण

(ख) अशाब्दिक परीक्षण

(ग) निष्पादन परीक्षण

(घ) अभाषाई परीक्षण

1) **शाब्दिक परीक्षण-** शाब्दिक परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें एकांश एवं निर्देश को व्यक्ति स्वयं पढ़ता है तथा फिर उसे समझ कर उसका उत्तर देता है। ऐसे परीक्षण द्वारा उन क्षमताओं की माप होती है जिसमें पढ़ने एवं लिखने की अहमियत अधिक होती है। जलोटा सामूहिक सामान्य मानसिक क्षमता परीक्षण तथा मेहता सामूहिक बुद्धि परीक्षण इस परीक्षण के अच्छे उदाहरण है। इसे पेंसिल-और-कागज परीक्षण भी कहा जाता है क्योंकि इसमें व्यक्ति एकांशों के उत्तर को दिए गए उत्तर पत्र पर लिखता है।
2) **अशाब्दिक परीक्षण-** अशाब्दिक परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें शाब्दिक बुद्धि परीक्षण की तुलना में भाषा पर कम बल डाला जाता है। ऐसे परीक्षण के निर्देश में तो भाषा का प्रयोग होता है परन्तु एकांशों में भाषा का प्रयोग नहीं होता है। प्रत्येक एकांश में चित्र के सहारे एक समस्या उत्पन्न की जाती है और उसका उत्तर व्यक्ति को दिए गए चित्रों में से ही खोजकर निकालना होता है। रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज जो एक बुद्धि परीक्षण हैं, अशाब्दिक परीक्षण का अच्छा उदाहरण है।
3) **निष्पादन परीक्षण-** निष्पादन परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें भाषा का प्रयोग निर्देश देने में हो सकता है या चित्राभिनय तथा हाव-भाव द्वारा निर्देश देने पर भाषा का प्रयोग नहीं भी हो सकता है परन्तु इनके

एकांश में भाषा का प्रयोग बिलकुल ही नहीं होता है और व्यक्ति के सामने कुछ वस्तुएँ वास्तविक रूप से (न कि चित्र के रूप में) उपस्थित होती है जिसमें जोड़-तोड़ करके उनका उत्तर ढूँढ निकालना होता है। प्रसिद्ध परीक्षण जैसे पास एलांग परीक्षण, घन रचना परीक्षण आदि इसके कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण है।

4) **अभाषाई परीक्षण-** अभाषाई परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसमें भाषा का प्रयोग न तो एकांश में और ना ही निर्देश देने में ही होता है। व्यक्ति को मात्र संकेत देकर प्रत्येक एकांश के सही उत्तर को बतलाना होता है। इस तरह ऐसा परीक्षण भाषा की चंगुल से पूर्णतः मुक्त होता है। कैटल कलचर फ्री या फेयर परीक्षण, जो एक बुद्धि परीक्षण है, इसका अच्छा उदाहरण हैं।

9.4.5 मानकीकरण की कसौटी-

परीक्षण की रचना कभी तो तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती है तो कभी दीर्घकालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसका मानक तैयार किया जाता है।

माननीकरण की कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है-

(क) शिक्षक-निर्मित परीक्षण तथा

(ख) मानकीकृत परीक्षण

1) **शिक्षक निर्मित परीक्षण-** शिक्षक-निर्मित परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसका प्रयोग शिक्षकों द्वारा कक्षाओं के भीतर ही छात्रों के निष्पादन की जाँच के लिए करते हैं। ऐसे परीक्षण द्वारा शिक्षक मूलतः एक कक्षा में पढ़ने वाले सभी छात्रों के निष्पादन का आपस में तुलना करते हैं। ऐसे परीक्षण के क्रियान्वयन तथा प्राप्तांक लेखन के तरीके स्वयं शिक्षक ही निर्धारित करते हैं। संभवतः ऐसे परीक्षण का कोई मानक तैयार नहीं किया जाता है परन्तु कभी-कभी यह देखा गया है कि शिक्षक कक्षा के भीतर ही प्रयोग करने के लिए एक काम चलाऊ मानक तैयार कर लेते हैं।
2) **मानकीकृत परीक्षण-** मानकीकृत परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसे परीक्षण विशेषज्ञ अन्य शिक्षकों एवं पाठ्यक्रम विशेषज्ञों की मदद से तैयार करते हैं। ऐसे परीक्षण के क्रियान्वयन तथा प्राप्तांक लेखन का तरीका निश्चित एवं वस्तुनिष्ठ होता है तथा इसका एक मानक भी होता है। इसका परिणाम यह होता है कि इस परीक्षण का प्रयोग सभी तरह के छात्रों पर आसानी से किया जा सकता है और इसके परिणामों का आपस में वैज्ञानिक तुलना कर एक निश्चित निष्कर्ष पर आसानी से पहुँचा जा सकता है।

9.4.6 उद्देश्य की कसौटी-

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है, यानी, कभी बुद्धि मापने हेतु तो कभी व्यक्तित्व मापने हेतु आदि।

परीक्षण के उद्देश्य की कसौटी के आधार पर परीक्षण को निम्नलिखित मुख्य चार भागों में बाँटा गया हैं-

(क) बुद्धि परीक्षण

(ख) अभिक्षमता परीक्षण

(ग) व्यक्तित्व परीक्षण

(घ) उपलब्धि परीक्षण

1) **बुद्धि परीक्षण-** बुद्धि परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसका उददेश्य व्यक्तियों की बुद्धि को मापना होता है। बुद्धि परीक्षण शाब्दिक, अशाब्दिक; क्रियात्मक एवं अभाषाई कुछ भी हो सकता है।
2) **अभिक्षमता परीक्षण-** अभिक्षमता परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसका उद्देश्य छात्रों की अभिक्षमता का मापन करना होता है। अभिक्षमता से तात्पर्य किसी विशेष क्षेत्र में व्यक्तियों के भीतर छिपा हुआ अन्तःशक्ति से होता है। विभेदक अभिक्षमता परीक्षण, जिसके द्वारा व्यक्तियों के सात तरह के अभिक्षमताओं का मापन होता है, इस तरह के परीक्षण का एक अच्छा उदाहरण है।
3) **व्यक्तित्व परीक्षण-** व्यक्तित्व परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसके द्वारा व्यक्तियों के शीलगुण, समायोजन, अभिरूचि, मूल्य आदि का मापन होता है। ऐसे परीक्षणों की मनोविज्ञान तथा शिक्षा में भरमार है। वेल समायोजन परीक्षण, आइजेन्क व्यक्तित्व प्रश्नावली इसके अच्छे उदाहरण हैं।
4) **उपलब्धि परीक्षण-** उपलब्धि परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसके द्वारा किसी खास विषय या क्षेत्र में व्यक्तियों के अर्जित निपुणता को मापा जाता है। उपलब्धि परीक्षण भिन्न-भिन्न विषयों के लिए अलग-अलग बनाये गये हैं।

इस तरह स्पष्ट हुआ कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण को भिन्न-भिन्न कसौटियों के आधार पर भिन्न-भिन्न भागों में बाँटा ग या है। आशा है आप मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विभिन्न प्रकारों से अवगत हो गए होंगे।

9.5 सारांश

- मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत उपकरण है जो शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य व्यवहारों के सहारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक या अधिक पहलुओं को वस्तुनिष्ठ रूप से मापता है।
- एक उत्तम मनोवैज्ञानिक परीक्षण की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता, वैधता एवं मानक।
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण का निर्माण किसी खास गुण, विशेषता, व्यवहार या मानसिक प्रक्रिया को मापने के लिए किया जाता है। अतः विभिन्न कसौटियों के आधार पर इसके प्रकारों में भी भिन्नता पाई जाती है।
- परीक्षण प्रशासन की शर्तो की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण को वैयक्तिक एवं सामूहिक परीक्षण के रूप में विभाजित किया गया है।
- अंकन की कसौटी के आधार पर इसके दो प्रकार होते हैं- वस्तुनिष्ठ परीक्षण एवं आत्मनिष्ठ परीक्षण।
- अनुक्रिया से सम्बद्ध समय सीमा की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण को क्षमता परीक्षण एवं गति परीक्षण में विभाजित किया गया है।

- एकांशों के स्वरूप की कसौटी के आधार पर इसे शाब्दिक, अशाब्दिक, निष्पादन तथा अभाशाई परीक्षण में विभक्त किया गया है।
- मानकीकरण की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण के दो भेद बताये गए हैं - शिक्षक-निर्मित परीक्षण एवं मानकीकृत परीक्षण।
- परीक्षण के उद्देश्य की कसौटी के आधार पर चार प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण होते हैं - बुद्धि परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण तथा उपलब्धि परीक्षण।

9.6 शब्दावली

- **मनोवैज्ञानिक परीक्षण:** एक मानकीकृत उपकरण जो शाब्दिक या अशाब्दिक अनुक्रियाओं या अन्य व्यवहारों के सहारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक या अधिक पहलुओं को वस्तुनिष्ठ रूप से मापता है।
- **विश्वसनीयता:** यदि किसी परीक्षण पर एक ही प्रतिदर्श के आज के प्राप्तांक और कुछ समय बाद के प्राप्तांक में संगति दिखाई दे तो इस 'कालिक संगति' को परीक्षण की विश्वसनीयता कहते हैं।
- **वैधता:** परीक्षण की वैधता उसकी वह क्षमता है जिसके सहारे वह उस गुण या कार्य को मापता है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया हैं।

9.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है कौन-सा असत्य?

(i) मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक मानकीकृत परीक्षण है।

(ii) मनोवैज्ञानिक परीक्षण में विश्वसनीयता का गुण पाया जाता है।

2) रिक्त स्थानों को भरें-

(i) यदि कोई परीक्षण बार-बार प्रशासित किए जाने पर हर बार एक ही जैसा परिणाम दे तो

उसे एक.....परीक्षण कहा जायेगा। (विश्वसनीय/वैध)

(ii) यदि कोई परीक्षण ठीक उसी गुण को मापता है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया है

तो परीक्षण को एक .....परीक्षण कहा जायेगा। (विश्वसनीय/वैध)

3. ऐसे परीक्षण जिसमें एकांशों का कठिनता स्तर भिन्न-भिन्न होता है परन्तु परीक्षार्थी को एकांशों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय दिया जाता है .....परीक्षण कहलाता है। (गति/क्षमता)

4. निबन्धात्मक परीक्षा एक.....परीक्षण है। (वस्तुनिष्ठ/आत्मनिष्ठ)

5. जलोटा मानसिक योग्यता परीक्षण एक ..... परीक्षण है। (वैयक्तिक/सामूहिक)

उत्तर: 1. (i) सत्य (ii) सत्य 2. (i) विश्वसनीय (ii) वैध

3.क्षमता 4. आत्मनिष्ठ 5. सामूहिक

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली।
- एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
- एफ.एन. करलिंगर (2002) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।
- राम आहूजा (2009) रिसर्च मेथड्स, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर

9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक परीक्षण से आप क्या समझते हैं? एक अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षण की कौन-कौन सी विशेषताएँ होती हैं?
2. परीक्षण के उद्देश्य की कसौटी के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षण को कितने भागों में बांटा गया है? विवेचना करें।
3. अन्तर स्पष्ट करें -
   (i) गति एवं क्षमता परीक
   (ii) वैयक्तिक एवं सामूहिक परीक्षण

इकाई-10 एक अच्छे प्रतिदर्शन का अर्थ, विशेषता, आकार एवं विश्वसनीयता (Meaning, characteristics, size and reliability of a good sample)

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 प्रतिदर्श का अर्थ

10.4 अच्छे प्रतिदर्श की विशेषताएँ

10.5 प्रतिदर्श आकार

10.6 प्रतिदर्श की विश्वसनीयता

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

व्यवहारपरक शोध हो चाहे प्रयोगात्मक या अप्रयोगात्मक उसमें समष्टि एवं उससे चुने गए प्रतिदर्श का विशेष महत्व होता है। यह समष्टि पहले से परिभाषित कर ली जाती है और उसमें से ही अनुसंधान में अध्ययन किए जाने वाले व्यक्तियों या सदस्यों का चयन किया जाता है, जिसे प्रतिदर्श कहा जाता है। प्रतिदर्श की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। एक निश्चित संख्या में शोध में समष्टि से प्रतिदर्शों का चयन भी किया जाता है। चुने गुए प्रतिदर्शों में प्रतिनिधिक गुण होता है, जो समष्टि का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिदर्श प्रतिनिधिक हो इसलिए पूर्वाग्रह से रहित होकर उनका चयन किया जाना चाहिए। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि समष्टि भी अच्छी तरह से परिभाषित हो। इस इकाई में प्रतिदर्श क्या है, इसकी निशेषताओं एवं विश्वसनीयता तथा इसके आकार के विषय में वर्णन किया गया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर सकेंगे:

- प्रतिदर्श क्या है तथा उसकी विशेषताओं का वर्णन करें,

- प्रतिदर्श की विश्वसनीयता का उल्लेख करें।
- प्रतिदर्श की संख्या या आकार की व्याख्या करें।

10.3 प्रतिदर्श का अर्थ

अनुसंधान पद्धति में समष्टि प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्श इकाई तकनीकी पद है। इनका अनुसंधान में उपयोग विशेष अर्थों में किया जाता है।

अनुसंधान पद्धति में, समष्टि एवं जनसंख्या शब्द एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। वस्तुओं, व्यक्तियों या घटनाओं के उस सम्पूर्णता या संघात को समष्टि कहा जाता है जिसके बारे में उसके कुछ व्यक्तियों, घटनाओं या पदार्थों को प्रतिदर्श के रूप में लेकर तथ्य संग्रह किया जाता है और उन तथ्यों के आधार पर उस सम्पूर्ण संघात के बारे में अनुमान लगाया जाता है। समष्टि को परिभाषित करने के लिए कई आधार हो सकते हैं जैसे- आयु, सेक्स, शिक्षा, जाति, वर्ण, क्षेत्र आदि। समष्टि चाहे जिस प्रकार की हो परिमित या अपरिमित हो सकती है। अनुसंधानकर्ता समष्टि को अपने ढंग से परिभाषित कर सकता है। वह चाहे तो एक महाविद्यालय में स्नातक कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्रों को ले सकता है और उससे प्रतिदर्श लेकर वर्णनात्मक अध्ययन कर सकता है।

समष्टि चाहे कितनी भी परिमित हो व्यावहारिक स्तर पर इसके समस्त सदस्यों का प्रेक्षण और मापन किसी भी अनुसंधान में सम्भव नहीं होता है। अतः शोधकर्ता समष्टि से कुछ सदस्यों के प्रतिदर्श के रूप में चयन करता है और उसी प्रतिदर्श का अध्ययन करता है। प्रतिदर्श किसी समष्टि से लिए गए व्यक्तियों, पदार्थो, घटनाओं या अनुक्रियाओं का वह समुच्चय या समूह है जिनका चुनाव समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले समूह के रूप में किया जाता है। प्रतिदर्श सदस्यों या इकाइयों का वह उप समूह है जिसका चयन किसी समष्टि से किसी उपयुक्त विधि द्वारा किया जाता है। विधि की उपयुक्तता पर ही प्रतिदर्श का प्रतिनिधिक होना आश्रित होता है। प्रतिदर्श को कहा जाता है कि यह समष्टि का एक अंश होता है। पी0 वी0 यंग के अनुसार- *एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का लघुचित्र होता है।*

प्रतिदर्श केवल व्यक्तियों को लेकर ही नहीं बल्कि घटनाओं, विभिन्न परीक्षाणों, व्यवहारों, प्रेक्षणों या किसी भी प्रकार की इकाइयों को लेकर बनाये जा सकते हैं। प्रतिदर्श की संख्या कोई भी हो सकती है। प्रतिदर्श की संख्या जितनी होती है उसमें उतनी इकाइयां होती हैं। प्रतिदर्श में संख्या का निर्धारण अनेक आधारों पर किया जाता है। इतना अवश्य ध्यान रखा जाता है कि प्रतिदर्श की इकाइयों की संख्या उतनी अवश्य हो जो समष्टि का प्रतिनिध्यात्मक होने के लिए आवश्यक है। प्रतिदर्श का इसलिए किसी अनुसंधान में महत्व होता है कि उनके आधार पर किसी समष्टि में पाये जाने वाले गोचरों या चरों के बारे में सामान्यीकरण किया जाता है। प्रतिदर्श का चयन भी इसलिए किया जाता है और चयन की विशेष प्रक्रिया का उपयोग कर उसे समष्टि का प्रतिनिध्यात्मक रूप दिया जाता है, जिससे उसका अध्ययन कर समष्टि के बारे में जानकारी की जा सके।

समष्टि या प्रतिदर्श का गठन विभिन्न प्रकार की इकाइयों से होता है। समष्टि को अक्सर अनेक भागों में विभक्त कर देते हैं, जिसे समष्टि का भाग या वर्ग कहा जाता है। प्रत्येक भाग में एक या एक से अधिक इकाइयाँ हो

सकती हैं। कोई भी इकाई एक से अधिक भाग में शामिल नहीं हो सकती है। ऐसी ही इकाइयों से बने भागों या संघात को समष्टि या जनसंख्या कहा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि सामाजिक विज्ञानों में प्रतिदर्श इकाई का प्रेक्षण कर प्रदत्त प्राप्त किया जाता है। इन्हीं प्रतिदर्श प्राप्तांकों के आधार पर समष्टि के सम्बन्ध में सामान्यीकरण किया जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रतिदर्श की विशेषताओं का मापन कर समष्टि की विशेषताओं का अनुमान किया जाता है। इस प्रकार अध्ययन की जाने वाली विशेषताओं के माप समष्टि में भी रहते हैं और प्रतिदर्श में भी। समष्टि मानों को प्राचल का नाम तथा प्रतिदर्श मानों को आकल का नाम दिया जाता है प्राचल गुण धर्म का वह मान है जिसमें समष्टि का वर्णन होता है तथा आकल प्रतिदर्श का वह मान है जिससे प्रतिदर्श के गुण धर्म का वर्णन होता है और आकल को प्राचल का वर्णन करने के लिए ज्ञात किया जाता है। प्राचल एवं आकल में सर्वदा विभिन्नता होती है। आकल एवं प्राचल की इस भिन्नता को ही प्रतिदर्श चयन की त्रुटि कहा जाता है। यह प्रतिदर्श चयन त्रुटि = प्राचल त्रुटि - आकल के बराबर होती है।

10.4 उच्च प्रतिदर्श की विशेषताएँ

एक अच्छे प्रतिदर्श में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं –

1- प्रतिदर्श में प्रतिनिधिक गुण होते हैं।

2- प्रतिदर्श में वे सभी गुण होते हैं जो उसके समष्टि के सभी सदस्यों में होते हैं।

3- प्रतिदर्श में संख्या कम रहने से गहन अध्ययन सम्भव होता है।

4- अच्छे प्रतिदर्शों के कारण समय एवं धन की बचत होती है।

5- प्रतिदर्श प्रतिनिधिक हो इसलिए आवश्यक होता है कि इनका चयन पूर्वाग्रह से रहित हो।

6- प्रतिदर्श चुने हुए व्यक्तियों या वस्तुओं की संख्या ऐसी होती है जो पूरे समष्टि का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है।

7- एक अच्छे प्रतिदर्श के लिए यह भी आवश्यक है कि समष्टि अच्छी प्रकार से परिभाषित हो।

8- अच्छे प्रतिदर्श के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रतिदर्शन की किसी उपयुक्त विधि के द्वारा इनका चयन हो।

9- प्रतिदर्श एक निश्चित संख्या में समष्टि से चयन किया गया सदस्यों का एक समूह होता है।

10- समष्टि की सजातीयता हो।

11- जब प्रतिदर्श का स्वरूप प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त पर आधारित रहता है तब निष्कर्ष सही प्राप्त होने की सम्भावना अधिक रहती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक उत्तम प्रकार के प्रतिदर्श का आधार यादृच्छिक होना चाहिए।

10.5 प्रतिदर्श का आकार

प्रतिदर्श के आकार से तात्पर्य है समष्टि से यादृच्छिक ढंग से चुनी गई इकाइयों की संख्या से है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि किसी भी अध्ययन में समष्टि से चुने गए सदस्य जैसे- छात्रों की संख्या, परिवारों की संख्या जिससे हम समस्त जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उसे प्रतिदर्श आकार कहा जाता है। प्रतिदर्श में इकाइयों के संख्या के निर्धारण में अनेक बातें विचारणीय होती हैं । इसका एक प्रमुख निर्धारक है, अध्ययन किए जाने वाले गोचर की समष्टि में पाये जाने वाली विचरणशीलता। जब अध्ययन किया जाने वाला गोचर अपेक्षाकृत अधिक विचरणशील है तो प्रतिदर्श की संख्या जितनी बड़ी होगी उतना ही अच्छा माना जायेगा । जब समष्टि में कम विचरणशीलता होगी तब कम संख्या वाला प्रतिदर्श ही अच्छा होगा । यदि गोचर में विचरणशीलता की मात्रा शून्य है तो प्रतिदर्श में मात्र एक इकाई ही पर्याप्त होगी । वैसे मनोविज्ञान में अध्ययन किए जाने वाले गोचरों में बहुविचरणशीलता पाई जाती है। इसीलिए सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित अध्ययनों में बड़ी संख्या वाला प्रतिदर्श अधिक उपयुक्त माना जाता है। प्रतिदर्श में इकाइयों की संख्या अध्ययनों में किए जाने वाले गोचरों की उपलब्धता पर भी निर्भर करती है। अध्ययन किए जाने वाला गोचर जितना ही दुर्बल होता है उतने ही बड़ प्रतिदर्श की जरूरत होती है। अनुसंधान में प्रतिदर्श की संख्या इस बात पर भी निर्भर करती है कि किस प्रकार का अनुसंधान किया जा रहा है तथा अनुसंधान का उद्देश्य क्या है। स्तरित प्रतिदर्श में प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण विभिन्न स्तरों पर अध्ययन किए जाने वाले गोचरों में कितनी भिन्नता है इस बात पर भी प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण होता है। यदि भिन्नता कम है तो दोनों स्तरों से बड़ी संख्या वाले प्रतिदर्श का होना आवश्यक है। सामान्यतया यह माना जाता है कि यादृच्छिक प्रतिदर्श का आकर जितना बड़ा होता है उससे प्राप्त होने वाले परिणाम भी उतने ही विश्वसनीय होते हैं । अनुसंधान का अभिकल्प भी प्रतिदर्श के आकार को निर्धारित करता है ।

10.6 प्रतिदर्श की विश्वसनीयता

प्रतिदर्शन के द्वारा प्रतिदर्श को अपनी समष्टि का प्रतिनिधि बनाया जाता है। प्रतिचयन विधि के उपयोग का वैज्ञानिक आधार होता है। जब सांख्यिकीय निरन्तरता तथा व्यापक संख्याओं के स्थिरता के नियमों का पालन करके प्रतिदर्श का चयन किया जाता है तब प्रतिदर्श की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। प्रतिदर्श सजातीय समष्टि से सम्बन्धित होने पर भी प्रतिदर्श की विश्वसनीयता बढ़ती है। एक उत्तम या विश्वसनीय प्रतिदर्श वही होता है जब उससे प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता का स्तर उच्च वैज्ञानिक श्रेणी का हो । एक अच्छे एवं विश्वसनीय प्रतिदर्श के लिए यह भी आवश्यक है कि समय एवं धन के दृष्टिकोण से भी अल्पव्ययी हो ।

10.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि प्रतिदर्श क्या होता है। प्रतिदर्श समष्टि या जनसंख्या का लघुरूप होता है जो समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिदर्श की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं । एक उत्तम प्रतिदर्श के लिए यह आवश्यक होता है कि उसका स्वरूप प्रतिनिध्यात्मक हो, प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त पर आधारित हो, संख्या पर्याप्त हो, समय एवं धन की बचत हो । प्रतिदर्श सजातीय समष्टि से हो इत्यादि । इसमें प्रतिदर्श के आकार से तात्पर्य है समष्टि से यादृच्छिक ढंग से चुनी गई इकाइयों की संख्या से है। प्रतिदर्श में संख्या के निर्धारण में अनेक बातें विचारणीय होती हैं । प्रतिदर्श की विश्वसनीयता से तात्पर्य है कि जिन प्रतिदर्शो को समष्टि से चयनित किया

गया है क्या इनके चयन में उचित प्रतिदर्शन विधि का उपयोग किया गया है तथा प्रतिदर्श में चुने गए व्यक्ति या इकाई समष्टि के विभिन्न वर्गो या स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

10.8 शब्दावली

- **समष्टि :** समष्टि एवं जनसंख्या एक दूसरे के पर्याय हैं। समष्टि वस्तुओं, घटनाओं या व्यक्तियों के उस साकल्य या संघात को कहा जाता है जिसके बारे में उसके कुछ व्यक्तियों, घटनाओं या पदार्थो को प्रतिदर्श के रूप में लेकर तथ्य संग्रह किया जाता है। उस तथ्य संग्रह के आधार पर उस सम्पूर्ण संघात के बारे में अनुमान लगाया जाता है
- **प्रतिदर्श :** किसी समष्टि से लिए गए व्यक्तियों, पदार्थों, घटनाओं या अनुक्रियाओं का वह समुच्चय या समूह है जिनका चुनाव समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाले समूह के रूप में किया जाता है।
- **प्रतिदर्श आकार :** प्रतिदर्श में समष्टि से यादृच्छिक ढंग से ली गई इकाइयों की संख्या।
- **प्रतिदर्श इकाई :** ये सभी समष्टि या जनसंख्या के सदस्य होते हैं।
- **प्राचल :** समष्टि मानों को प्राचल कहा जाता है। प्राचल गुण धर्म का वह मान है जिससे समष्टि का वर्णन होता है।
- **आकल :** प्रतिदर्श मानों को आकल कहा जाता है। यह प्रतिदर्श का वह मान है जिससे प्रतिदर्श के गुण-धर्म का वर्णन होता है और आकल, प्राचल का वर्णन करने के लिए ज्ञात किया जाता है।
- **प्रतिचयन त्रुटि :** आकल और प्राचल की भिन्नता को प्रतिचयन त्रृटि कहा जाता है। प्रतिचयन त्रुटि=आकल-प्राचल

10.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- प्रतिदर्श समष्टि का --------- होता है।

2- समष्टि से कुछ ------ को चुनकर प्रतिदर्श का गठन किया जाता है।

3- प्रतिदर्श के आधार पर प्राप्त मान को ------- कहा जाता है।

4- प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को -------- कहा जाता है।

5- प्रतिदर्श का आकार बड़ा होने से प्रतिदर्श त्रुटि की सम्भावना कम हो जाती है। (सत्य/असत्य)

उत्तर: 1. लघुरूप 2. इकाइयाँ 3. सांख्यिकी 4. प्रतिदर्शन 5.सत्य

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव, बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P. K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F.J. (1990) : Experimental Psychology.

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रतिदर्श के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. प्रतिदर्श की विश्वसनीयता का वर्णन कीजिए।
3. टिप्पणी लिखिए:

    1- प्रतिदर्श आकार 2- समष्टि

इकाई-11 संभाव्यता प्रतिदर्शन:- सरल एवं स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Probability Sampling -Simple and Stratified Random Sampling)

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 सम्भावित प्रतिदर्शन

11.4 साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन

11.5 स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रतिदर्श के द्वारा समष्टि के बारे में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होती है। जब समष्टि से प्रतिदर्श का चयन किया जाता है तब यह विशेष ध्यान दिया जाता है कि वह समष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। सामान्यतः प्रतिदर्श चयन या प्रतिदर्शन को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त करते हैं- संभावित एवं असंभावित।

सम्भावित प्रतिदर्शन सैद्धान्तिक रूप में अपनी समष्टि का पूर्णतः प्रतिनिधि होता है। संभावित प्रतिदर्शन की मुख्यतः तीन विधियाँ होती हैं - लाटरी विधि, ड्रम चक्र विधि एवं टिपिट की संयोगिक संख्याएँ।

असंभावित प्रतिदर्शन में इकाइयों का चयन अध्ययनकर्ता के सुविधानुसार रहता है। इस इकाई में संभावित प्रतिदर्शन के दो प्रकारों- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन एवं स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन का विस्तृत वर्णन किया गया है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर सकेंगे -

- संभावित प्रतिदर्शन तथा उसकी विधियों का वर्णन करें ।

- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन के गुण-दोषों का वर्णन करें ।
- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन के गुण-दोषों का वर्णन करें ।

11.3 संभावित प्रतिदर्शन

प्रतिदर्शन की सहायता से उपयोग में लाये जाने वाले आंकड़ों की विश्वसनीयता पर प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त द्वारा नियंत्रण रखा जाता है। प्रतिदर्शन से तात्पर्य उस क्रमबद्ध चयन पद्धति से है, जिसकी सहायता से एक समष्टि से सम्बन्धित वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कम से कम इकाइयों के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार प्रतिदर्शन के द्वारा प्रतिदर्श को अपनी समष्टि का प्रतिनिधिक बनाया जाता है। प्रतिदर्शन को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त करते हैं –

1- संभावित प्रतिदर्शन 2- असंभावित प्रतिदर्शन

संभावित प्रतिदर्शन ऐसे प्रतिदर्शन परियोजना को कहते हैं जिसमें समष्टि के सदस्यों का प्रतिदर्श में शामिल किए जाने की संभावना ज्ञात होती है। इस प्रकार प्रतिदर्शन में मुख्य रूप से इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है -

समष्टि जिससे प्रतिदर्श का चयन होना है। उसका आकार अवश्य निश्चित हो । समष्टि के प्रत्येक सदस्य को प्रतिदर्शन में शामिल किए जाने की सम्भावना समान हो । समष्टि की सजातीयता हो ।

संभावित प्रतिदर्शन में मुख्य रूप से प्रतिदर्श चयन हेतु तीन विधियों का उपयोग किया जाता है -

1) लाटरी विधि 2) ड्रम चक्र विधि 3) टिपिट की संयोगिक विधि

लाटरी विधि में समष्टि की सभी इकाइयों को क्रम संख्या प्रदान कर अलग-अलग पुड़िया बना लिया जाता है। फिर समस्त पुड़िया को एक डिब्बा में रख दिया जाता है। पुनः वांछित प्रतिदर्श जो अध्ययन हेतु लिया जाना है उसमें से एक पुड़िया निकालकर उसकी क्रम संख्या नोट कर लेते हैं । पुनः उस पुड़िया को बंदकर उस डिब्बे में डाल दिया जाता है और फिर दूसरी पुड़िया निकालकर उसका नम्बर नोटकर लेते हैं । पुनः इस पुड़िया को भी बंदकर उस डिब्बे में डाल दिया जाता है। यही क्रम तब तक चलता रहता है जब तक प्रतिदर्श की वांछित संख्या नहीं प्राप्त हो जाती है। यह प्रक्रिया अपनाने से समष्टि के सभी सदस्यों के चुने जाने की सम्भावना समान रूप से रहती है। ड्रम चक्र विधि के अंतर्गत ड्रम पर इकाइयों, दहाइयों, सैकड़ों व सहस्त्रों की संख्या अंकित होती है। ये संख्याएँ 0 से लेकर 9 तक रहती हैं और जब ड्रम पर लगी सुइयों को घुमाया जाता है तब उनके घूमने से इकाई, दहाई व सैकड़े वाली संख्याओं को अंकित कर लिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कि वांछित संख्या पूरी नहीं हो जाती है। टिपेट की संयोगिक संख्याओं की तालिका में भी संयोग पर आधारित वांछित संख्या को लिया जा सकता है।

संभावित प्रतिदर्शन में इकाइयों का चयन संयोगिक (Random) आधार पर किया जाता है, इसलिए कभी-कभी इस प्रतिदर्श को संयोगिक या यादृच्छिक प्रतिदर्शन या प्रतिचयन भी कहा जाता है।

इस प्रतिदर्शन के निम्नलिखित लाभ हैं -

1- पक्षपात से मुक्ति।

2- समष्टि का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व होता है।

3- प्रतिदर्शन की मानक त्रुटि का अंकन।

4- समय एवं धन की बचत।

5- सरल तथा वैज्ञानिक विधि।

इस प्रतिदर्शन की कुछ कठिनाइयाँ भी हैं -

2- चयन होने के बाद इकाइयों में परिवर्तन या संसोधन सम्भव नहीं।

3- समष्टि की पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

4- जब अधिक व्यापक क्षेत्र होगा तब यह विधि अनुप्रयुक्त होगी।

5- जब भौगोलिक स्वरूप विषम होता है तब भी यह विधि अनुप्रयुक्त होती है।

6- इस पद्धति से चयनित इकाइयों का स्वरूप अस्थिर रहता है।

संभावित या प्रसंभाव्यता प्रतिदर्शन के पाँच प्रमुख प्रकार या प्रक्रियाएँ हैं -

1- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन

2- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन

3- क्षेत्र प्रतिदर्शन

4- गुच्छन प्रतिदर्शन

5- आनुपातिक यादृच्छिक प्रतिदर्शन

11.4 साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन

साधारण या सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन किसी भी समष्टि से एक निश्चित संख्या वाले प्रतिदर्श के चयन के उस प्रक्रम को कहते हैं जिसके अनुसार उस संख्या में लिए जा सकने वाले सभी सम्भव प्रतिदर्शों के चयन की समान संभावना रहती है। जब समष्टि परिमित होती है तब सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन आसान होता है। इसमें किसी भी सदस्य के प्रतिदर्श में शामिल होने की सम्भावना 1/एन होती है। इस प्रकार के प्रतिचयन के लिए लाटरी विधि, ड्रम चक्र विधि एवं टिपेट की संयोगिक विधि सबसे अधिक उपयुक्त होती है। क्योंकि इस प्रकार के प्रतिदर्शन में समष्टि के समस्त सदस्यों के चुने जाने की समान संभावना तो होती ही है साथ ही किसी भी सदस्य का चयन किसी दूसरे सदस्य के चयन से पूर्णतः स्वतंत्र होता है।

सरल या साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन के कुछ लाभ एवं दोष भी है। इसके प्रमुख लाभ या गुण इस प्रकार हैं -

2- इसमें जिन प्रतिदर्शों का समष्टि से चयन होता है वे सभी प्रतिदर्श अपने समष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं।

3- साधारण या सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन सभी तरह के यादृच्छिक प्रतिदर्श के लिए एक ठोस आधार का काम करता है।

4- इसमें समय एवं धन की बचत तो है ही साथ ही यह प्रतिदर्शन काफी सरल है।

5- इसमें प्रतिदर्शन त्रुटि को सरलता से ज्ञात किया जा सकता है।

सरल यादृच्छिक प्रतिदर्शन के दोष इस प्रकार हैं -

1- इसमें जिस वर्ग के सदस्यों की समष्टि में संख्या कम होती है। उनके प्रतिदर्शन में शामिल होने की गारंटी कम रहती है।

2- यह स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन की तुलना में कम विश्वसनीय होता है।

3- इसमें शोधकर्ता को समष्टि की विशेषताओं के बारे में प्राप्त ज्ञान का उपयोग करने का मौका नहीं मिलता है।

11.5 स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्शन

जब समष्टि का स्वरूप विषमजातीय होता है तब उसका विभाजन विभिन्न स्तरों के आधार पर करना अधिक उचित होता है। इस विभाजन के कई आधार या स्तर हो सकते है। आयु, लिंग, धर्म, शिक्षा, वजन, जाति, वर्ण, सामाजिक-आर्थिक स्तर इत्यादि। ये आधार इन उपसमूहों के गुण धर्म होते हैं। सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन किए जाने वाले गोचर इन गुण-धर्मों से सम्बन्धित होने के कारण प्रतिदर्श चयन की पक्रिया में उसके प्रतिनिध्यात्मक स्वरूप को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थितियों में प्रतिदर्श चयन हेतु स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन की प्रक्रिया उपयुक्त होती है।

स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श चयन करने के लिए समष्टि को विभिन्न स्तरों में विभक्त करते समय स्तरण के लिए गुण धर्मो के चयन में कुछ बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। जिस गुण-धर्म के आधार पर स्तरण किया जाना होता है तो यह ध्यान रखना होता है कि वे गुण-धर्म उस समष्टि के उस उपसमूह में अवश्य हों। यह भी कि उस गुण-धर्म के आधार पर सहज ढंग से समष्टि को विभिन्न स्तरों में बाँटा जा सके। प्रतिचयन करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि समष्टि का कोई सदस्य एक से अधिक स्तरों में स्वाभाविक रूप से भी रखा जाय। समष्टि को विभिन्न स्तरों में विभक्त कर लेने के बाद प्रत्येक से आवश्यक संख्या में प्रतिदर्श चयन सरल यादृच्छिक प्रक्रिया का उपयोग कर किया जा सकता है। लेकिन अक्सर स्तरण का उद्देश्य प्रतिदर्श को प्रतिनिध्यात्मक बनाना होता है अतः स्तर के आधार पर उस स्तर से लिए जाने वाले प्रतिदर्श की संख्या का निर्धारण होता है। इसीलिए अक्सर स्तरित प्रतिदर्श चयन को समानुपातिक स्तरित प्रतिदर्श चयन कहा जाता है। मान लीजिए किसी गॉव के युवकों की संख्या 1000 है। इसमें 300 युवकों को प्रतिदर्श में लिया जाना है। इस 1000 की संख्या

में 200 ब्राह्मण, 300 क्षत्रिय, 300 पिछड़ा वर्ग एवं 200 अनुसूचित वर्ग के युवक हैं। समष्टि में इन वर्गों का जो समानुपात है वही समानुपात प्रतिदर्श में भी होना चाहिए। इनका निर्धारण नीचे दी गई तालिका में है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ विभिन्न स्तरों से प्रतिदर्श के सदस्यों का चयन यादृच्छिक प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इसीलिए इस प्रकार का प्रतिदर्श चयन यादृच्छिक माना जाता है।

स्तर	संख्या	प्रतिदर्श संख्या
ब्राह्मण	200	60
क्षत्रिय	300	90
पिछड़ा वर्ग	300	90
अनुसूचित जाति	200	60

स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन के गुण या लाभ

1- अधिक प्रतिनिध्यात्मक।

2- कम मानक त्रुटि।

3- अधक विश्वसनीयता।

4- अधिक वैज्ञानिक एवं गहन अध्ययन।

5- इकाइयों के छूटने की सम्भावना कम रहती है।

स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन की कठिनाइयाँ या दोष

1- स्तरों के चयन में कठिनाई।

2- इसमें स्तरों के चयन में व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है।

3- चूँकि संबन्धित स्तरों का स्वरूप स्थायी नहीं रहता है अतः इस विधि द्वारा प्राप्त आँकड़ों के शीघ्र अविश्वसनीय हो जाने की सम्भावना बनी रहती है।

11.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके होंगे कि प्रतिदर्शन क्या होता है। प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को प्रतिदर्शन कहा जाता है। प्रतिदर्शन के मुख्य रूप से दो प्रकार हैं - संभावित प्रतिदर्शन एवं असंभावित प्रतिदर्शन। संभावित प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श चयन हेतु मुख्यतः तीन विधियों का उपयोग करते हैं - लाटरी विधि, ड्रम चक्र विधि एवं टिपिट की संयोगिक विधि। संभावित प्रतिदर्शन के मुख्यतः पाँच प्रकार होते हैं - साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन

। स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन । आनुपातिक यादृच्छिक प्रतिदर्शन । क्षेत्र प्रतिदर्शन । गुच्छन प्रतिदर्शन । इस इकाई में साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन एवं स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन का वर्णन किया गया है।

11.7 शब्दावली

- **प्रतिदर्शन:** प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को प्रतिदर्शन कहते हैं ।
- **संभावित प्रतिदर्शन:** संभावित प्रतिदर्शन वैसे प्रतिदर्शन योजना को कहा जाता है जिसमें समष्टि के सदस्यों का प्रतिदर्श में शामिल किए जाने की संभावना ज्ञात होती है। इस प्रकार प्रतिदर्शन में इकाइयों का चयन संयोगिक आधार पर किया जाता है, जिसके अंतर्गत समष्टि के प्रत्येक इकाई के चयन की समान संभावना रहती है।
- **साधारण यादृच्दिक प्रतिदर्शन:** किसी भी समष्टि से एक निश्चित संख्या वाले प्रतिदर्श के चयन के उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके अनुसार उस संख्या में लिए जा सकने वाले सभी संभव प्रतिदर्श के चयन की समान सम्भावना रहती है।
- **स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन:** इसमें समष्टि के गुण-धर्मों का स्तरण करके जितने सम्भव उपसमूह हो सकते हैं निर्मित कर प्रत्येक उपसमूह से वांछित संख्या में प्रतिदर्श चयन किया जाता है। इसमें ध्यान रखा जाता है कि समष्टि का कोई भी सदस्य एक से अधिक स्तरों में न रखा जाय।

11.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- प्रतिदर्श तैयार करने की प्रविधि को -------- कहा जाता है ।

2- प्रतिदर्शन के ---------- प्रकार होते है ।

3- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन --------- का एक प्रकार है ।

4- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन असंभावित प्रतिदर्शन का एक प्रकार है - सत्य/असत्य

5- प्रतिदर्श चयन की लाटरी विधि संभावित प्रतिदर्शन की एक विधि है - सत्य/असत्य

उत्तर: 1-प्रतिदर्श 2-दो 3- संभावित प्रदर्शन 4- असत्य 5- सत्य

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा ।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा ।

- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास, पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P.K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz : Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F. J. (1990) : Experimental Psychology.

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2- संभावित प्रदर्शन क्या है? इसके गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

3- साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन का वर्णन करते हुए इसके गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिए।

4- स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन के लाभ एवं सीमाओं का वर्णन कीजिए।

5- टिप्पणी लिखिए:

i. लाटरी विधि
ii. संभावित यादृच्छिक प्रतिदर्शनकी कठिनाइयाँ

इकाई-12 गैर संभावित प्रतिदर्शन:- प्रासांगिक, कोटा एवं हिमकन्दु प्रतिदर्शन
(Non-Probability Sampling: - Incidental, Quota and Snow Ball sampling)

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 असंभावित प्रतिदर्शन

12.4 प्रासंगिक प्रतिदर्शन

12.5 कोटा प्रतिदर्शन

12.6 हिमकंदुक प्रतिदर्शन

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

जब प्रतिचयन में इकाइयों का चयन प्रासंभाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता है और शोधकर्ता को इकाइयों के चयन में प्रायः स्वतंन्त्रता रहती है एवं इकाइयों के चयन का आधार संयोग न रहकर सुविधा, अवसर, निर्णय आदि रहता है तब अप्रसंभाव्यता प्रतिदर्शन विधियों का उपयोग किया जाता है ।असंभाव्यता प्रतिदर्शन की वैसे तो कोटा प्रतिदर्शन, प्रासंगिक प्रतिदर्शन, उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन कमबद्ध प्रतिदर्शन, हिमकंदुक प्रतिदर्शन, संतृप्ति प्रतिदर्शन एवं धनीभूत प्रतिदर्शन विधियाँ हैं। यहाँ इस इकाई में प्रमुख रूप से प्रासंगिक प्रतिदर्शन, कोटा प्रतिदर्शन हिमकंदुक प्रतिदर्शन विधियों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर सकेंगे:

- असंभावित प्रतिदर्शन क्या है इसको समझ सकेंगे ।
- प्रासंगिक प्रतिदर्शन के लाभ एवं सीमाओं को जान सकेंगे ।

- कोटा प्रतिदर्शन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी।
- हिमकंदुक प्रतिदर्शन किन परिस्थितियों में प्रयुक्त किया जाता है इससे अवगत हो सकेंगे।

12.3 असंभावित प्रतिदर्शन

असंभावित प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श के चयन का आधार संयोग (Random) न रहकर सुविधा, अवसर, निर्णय आदि पर रहता है। इसमें प्रतिदर्श का चयन प्रसंभाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता है। अतः इस प्रकार के प्रतिदर्शन को असंभावित प्रतिदर्शन कहते हैं। इसमें शोधकर्ता प्रतिदर्श में उन्हीं इकाइयों को शामिल करता है जिनको लेने से उसके निर्णय के अनुसार प्रतिदर्श प्रभावशाली ढंग से प्रतिनिध्यात्मक बन जाता है। इसमें शोधकर्ता प्रतिदर्श चयन में आत्मनिष्ठ निष्कर्षों का उपयोग करता है। इस विधि के उपयोग से वैज्ञानिक परिणाम उपलब्ध नहीं होते। वैसे इस प्रतिदर्शन विधि में अनेक दोष होते हैं, परन्तु फिर भी अनुसंधान के क्षेत्र में इस विधि का व्यापक उपयोग किया जाता है। असंभावित प्रतिदर्शन की कई विधियाँ होती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विधियों का वर्णन किया जा रहा है।

12.4 प्रासंगिक प्रतिदर्शन

यह एक ऐसी असंभावित प्रतिदर्शन की विधि है जिसे सबसे अधिक स्थूल एवं अपक्व माना जाता है। इस विधि में शोधकर्ता उन सभी लोगों को अपने प्रतिदर्श में चयन कर लेता है जो सरलता एवं सुविधापूर्वक मिल जाते हैं। यह विधि काफी सीमा तक कोटा प्रतिदर्शन के समान होती है। अक्सर शोधकर्ता अपने अध्ययन हेतु उन छात्रों को अपने प्रतिदर्श में शामिल कर लेते हैं जो सहजरूप से एक साथ उपलब्ध हो जाते हैं।

प्रासंगिक प्रतिदर्शन के निम्नलिखित लाभ हैं -

2- इसमें शोधकर्ता को प्रतिदर्श काफी संख्या में एक ही समय एवं स्थान पर आसानी से मिल जाते है।

3- इसमें समय, श्रम एवं धन की बचत होती है।

प्रासंगिक प्रतिदर्शन की कुछ सीमाएँ भी होती हैं -

1- इस प्रकार के प्रतिदर्शन के आधार पर जो अध्ययन के निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उनका सामान्यीकरण समष्टि के सम्बन्ध में विश्वास के साथ नहीं किया जा सकता है।

2- इस प्रकार के प्रतिदर्शन में प्रतिदर्शन त्रुटि अधिक पायी जाती है।

3- इसमें शोधकर्ता के पूर्वाग्रह या पक्षपात का भी प्रतिदर्श के चयन पर प्रभाव पड़ता है जिसके कारण प्रतिदर्श की विश्वसनीयता में कमी आती है।

12.5 कोटा प्रतिदर्शन

कोटा प्रतिदर्शन एक प्रकार का असंभावित प्रतिदर्शन की विधि है। यह विधि स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन से काफी मिलती जुलती है। इस प्रतिदर्शन में शोधकर्ता समष्टि की विशेषताओं के अनुरूप कई स्तरों में पहचान कर प्रत्येक

स्तर से अपनी आवश्यकतानुसार या इच्छानुसार प्रतिदर्श का चयन कर लेता है। इसमें यादृच्छिक रीति का प्रतिदर्श चयन में उपयोग नहीं किया जाता है।

करलिंगर ने कोटा प्रतिदर्शन को परिभाषित करते हुए कहा है कि "कोटा प्रतिदर्शन एक प्रकार से असंभावित प्रतिदर्शन है जिसमें शोधकर्ता समष्टि के विभिन्न स्तरों जैसे यौन, जाति, क्षेत्र, शिक्षा या फिर इसी तरह के अन्य स्तरों के आधार पर प्रतिदर्श को चयन कर लेता है जो कुछ खास शोध उद्देश्यों के लिए प्रतिनिधिक, विशिष्ट एवं उपयुक्त होते हैं।"

कोटा प्रतिदर्शन के कुछ लाभ एवं परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख लाभ निम्नांकित हैं -

2- कोटा प्रतिदर्शन अन्य विधियों की तुलना में कम खर्चीली है।

3- जहाँ शोधकर्ता को एक स्थूल एवं तीव्र परिणाम चाहिए वहाँ यह विधि काफी उपयोगी है।

4- कोटा प्रतिदर्शन में सभी स्तरों से प्रतिदर्श का चुनाव अध्ययन हेतु किया जाता है। इसलिए इस प्रकार के प्रतिदर्श को प्रतिनिधिक प्रतिदर्श माना जाता है।

कोटा प्रतिदर्शन की परिसीमाएँ -

1- कोटा प्रतिदर्शन में अध्ययनकर्ता अक्सर उन लोगों को शामिल कर लेता है जो आसानी से उपलब्ध होते हैं। अतः जो यह कहा जाता है कि इस प्रकार के प्रतिदर्शन में चुने गए प्रतिदर्श प्रतिनिधिक होते हैं कहना कठिन है।

2- जब प्रतिदर्श प्रतिनिधिक नहीं है तो इस प्रकार के प्रतिदर्शन से प्राप्त निष्कर्ष का सामान्यीकरण करना उचित नहीं होगा।

3- कोटा प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श चयन में शोधकर्ता की मनमानी या इच्छा की प्रधानता होती है।

12.6 हिमकंदुक प्रतिदर्शन

जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है तब ऐसी स्थिति में हिमकंदुक प्रतिदर्शन का प्रयोग किया जाता है। यह भी एक प्रकार का असंभावित प्रतिदर्शन है। हिमकंदुक प्रतिदर्शन का स्वरूप मूलतः समाजमितीय होता है। इसको परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि यह प्रतिदर्शन की एक ऐसी प्रविधि है जिसमें किसी सीमित समूह या संगठन में सभी सदस्यों को अपने-अपने साथियों की पहचान करने को कहा जाता है। इस प्रकार शोधकर्ता के समक्ष समूह में साथियों या दोस्तों का एक समूह उभर कर आता है। जिससे उस समूह के पूर्व सामाजिक पैटर्न का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार के प्रतिदर्शन का उपयोग विशेषकर उन स्थितियों में अधिक किया जाता है जिसमें छोटे-छोटे व्यावसायिक एवं औद्योगिक संगठनों या अन्य परिस्थितियों जिसमें व्यक्तियों या सदस्यों की संख्या 100 से ज्यादा नहीं होती है। हिमकंदुक प्रतिदर्शन के कुछ लाभ एवं परिसीमाएँ भी हैं।

लाभ -

- इस प्रतिदर्शन का उपयोग छोटे समूह या संगठन के लिए काफी उपयोगी है।
- इस प्रकार के प्रतिदर्शन में चुने गए समूह के संचार पैटर्न की एक स्पष्ट तस्वीर मिलती है जिसका एक लाभ होता है।
- इस प्रकार के प्रतिदर्शन में लचीलापन का गुण होता है।

परिसीमाएँ -

- इस प्रतिदर्श में शोधकर्ता संभावित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग नहीं कर सकता है।

12.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान चुके होंगे कि असंभावित प्रतिदर्शन में प्रतिदर्श के चयन का आधार संयोग न रहकर सुविधा, अवसर, निर्णय आदि पर रहता है। इसमें प्रतिदर्श का चयन प्रसंभाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता है। प्रासंगिक प्रतिदर्शन वह प्रतिदर्शन होता है जिसमें उन सभी लागों को प्रतिदर्श में सम्मिलित किया जाता है जो सरलता एवं सुविधापूर्वक उपलब्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार कोटा प्रतिदर्शन में शोधकर्ता समष्टि के विशेषताओं के अनुरूप कई स्तरों में पहचान कर प्रत्येक स्तर से अपनी आवश्यकतानुसार प्रतिदर्श का चयन कर लेता है। जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है तब ऐसी स्थिति में हिमकंदुक प्रतिदर्शन का प्रयोग किया जाता है।

12.8 शब्दावली

- **असंभावित प्रतिदर्शन:** यह प्रतिदर्शन एक ऐसी प्रतिदर्शन परियोजना है जिसमें समष्टि के सदस्यों को प्रतिदर्श में शामिल किये जाने की सम्भावना ज्ञात नहीं होती है।
- **प्रासंगिक प्रतिदर्शन:** प्रासंगीक प्रतिदर्शन एक ऐसा असंभावित प्रतिदर्शन की विधि है जिसे सबसे अधिक स्थूल एवं अपक्व माना गया है। इसमें शोधकर्ता उन सभी व्यक्तियों को अपने प्रतिदर्श में शामिल कर लेता है जो उसे सरलता से उपलब्ध हो जाता है।
- **कोटा प्रतिदर्शन:** यह एक प्रकार का असंभावित प्रतिदर्शन है, जिसमें समष्टि के स्तरों के आधार पर प्रतिदर्शन की संख्याओं को चुना जाता है।
- **हिमकंदुक प्रतिदर्शन:** जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन शोधकर्ता करना चाहता है तब इस प्रकार के प्रतिदर्शन विधि का उपयोग किया जाता है। इसका स्वरूप मूलतः समाजमितीय होता है।

12.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1- असंभावित प्रतिदर्शन से प्राप्त प्रतिदर्श अपने ----- का सही-सही प्रतिनिधित्व नहीं करपाते हैं।

2- कोटा प्रतिदर्शन एक तरह का ----- की विधि है।

3- प्रासंगिक प्रतिदर्शन को अधिक स्थूल एवं ----- माना गया है।

4- जब व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों का अध्ययन करना होता है तब ---- का उपयोग करते हैं।

5- इनमें से कौन सा प्रतिदर्शन असंभावित प्रतिदर्शन का प्रकार नहीं हैं?

1- कोटा प्रतिदर्शन 2- प्रासंगिक प्रतिदर्शन

3- हिम कंदुक प्रतिदर्शन 4-साधारण याछच्छिक प्रतिदर्शन

उत्तर : 1-समष्टि 2-असंभावित प्रतिदर्शन 3-अपक्व 4-हिमकंदुक प्रतिदर्शन 5- प्रासंगिक प्रतिदर्शन

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- कपिल, डा0 एच0 के0 (2010): अनुसंधान विधियाँ- व्यवहारपरक विज्ञानों में, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशक, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, जयगोपाल (2007): मनोविज्ञान एवं शिक्षा में शोध पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- त्रिपाठी, प्रो0 लाल बचन एवं अन्य (2008): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान पद्धतियाँ, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।
- सिंह, अरूण कुमार (2009): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल- बनारसी दास पटना एवं वाराणसी।
- Goode, W.J. & Hatt, P.K. (1981): Methods in Scoial Research.
- Festinger and Katz: Research method in Behavioural Sciences.
- Kerlinger, F.N. (1986): Foundations of Behavioural Research.
- Mc Guin, F. J. (1990): Experimental Psychology.

12.12 **निबन्धात्मक** प्रश्न

1. असंभावित प्रतिदर्शन के गुण दोषों का वर्णन कीजिए।
2. प्रासंगिक प्रतिदर्शन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके गुणों का वर्णन कीजिए।
3. कोटा प्रतिदर्शन की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
4. हिमकंदुक प्रतिदर्शन का विस्तृत वर्णन कीजिए।